अगस्त - २००९

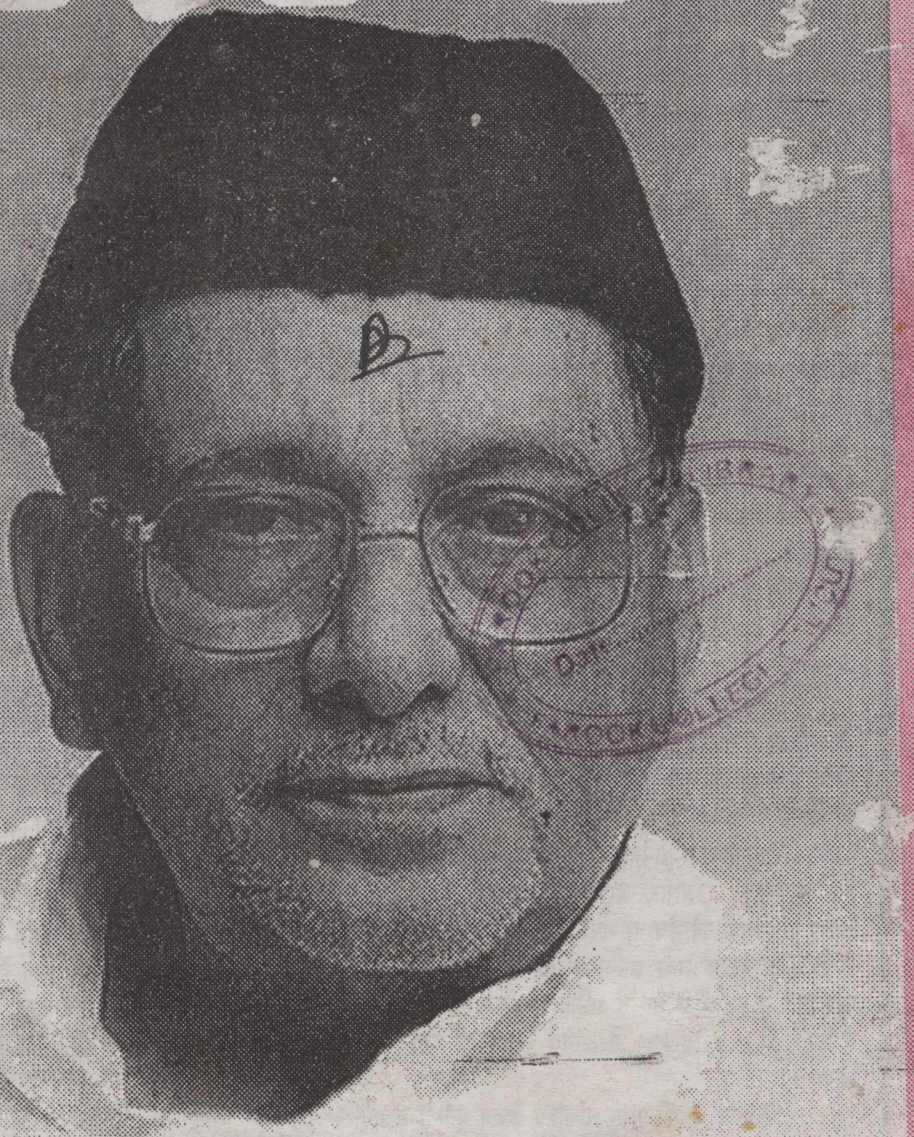

संग्रथन

हिन्दी विद्यापीठ (केरल), तिरुवनन्तपुरम

स्वर्गीय श्री. मुरली

मलयाळम के महान रंगधर्मी कलाकार मुरली स्मृतिशेष

मलयाळम फ़िल्मी दुनिया के मशहूर अभिनेता तथा मलयाळम नाट्य-मंच के कुशल रंगकर्मी श्री. मुरली का आकस्मिक देहांत ६ अगस्त २००९ को तिरुवनन्तपुरम के पी.आर.एस. अस्पताल में हुआ । वे ५६ बरस के थे । 'न्यूमोणिया' के कारण ही मृत्यु हुई । मरते वक्त उनकी धर्मपत्नी शैलजा और इकलौती बेटी कार्तिका पास थी ।

हाल ही में वे दक्षिण आफ्रिका से (एक तमिल फ़िल्म की सेट से) केरल लौट आए थे । शूटिंग के दिनों में आफ्रिका के लोकनाट्यमंच तथा आदिवासी कलाकारों के निकट संपर्क में रहकर रंगमंचीय शोधकार्य की कई योजनाएँ बनायीं । केरल संगीत नाटक अकादमी की चेयरमान की हैसियत से उन्हीं कलाप्रेमियों को यहाँ के नाटकोत्सव में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हेतु आमंत्रित करने को भी वे नहीं भूले । मलयाळम रंगमंच के बुद्धिजीवियों में मुरली की गणना की जाती है । उनकी मान्यता रही थी कि अनुभवों से स्वीकृत सत्य यही यथार्थ बन जाता है; सिद्धांतों से निर्धारित बात सही नहीं लगती । रंगकर्मी मुरली की नाट्य-प्रयोगधर्मिता का मूल विचार यही है ।

सौपर्णिका, नाट्यगृह आदि नाटक समितियों में मुरली की सक्रिया भागीदारी रही । 'लंका लक्ष्मी' नाटक मुरली की नाट्य प्रयोगधर्मिता का स्मृतिचिह्न है । एकाभिनय से रावण की तीव्रता व श्रीराम की स्नेह सांद्रता का अनुपम मेल मुरली ने दर्शाया। नाट्यगृह से वे सिनेमा जगत् में आए । सहज अभिनेयता, तीव्र नित-नूतन जिज्ञासा, अटूट एवं अद्भुत इच्छाशक्ति के कारण पुरुष-पात्रों को मंच पर सपलतापूर्वक वे प्रस्तुत कर सके । नायक, खलनायक तथा सहनायक के रूप में अपनी परुष पुरुषवाणी से दर्शकों के मन में अमिट भावचित्र अंकित करने में वे निमुण थे । करीब २५० से अधिक फ़िल्मों में उन्होंने काम किया ।

'पंचाग्नि' उनकी प्रथम लोकप्रिय फ़िल्म बनी । भरतम्, धनम्, पत्रम्, लाल सलाम, दशरथम्, केलि, निषलकुत्तु, वेंकलम्, अमरम्, आधारम्, पुलिजन्मं आदि उनके अति ख्याति-प्राप्त फिल्म हैं । 'नेय्त्तुकारन्' (जुलाहा) सिनेमा के अभिनय हेतु उन्हें भारत सरकार का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ ।

उन्हें लेखन कला में शौक हमेशा रहा । मलयाळम के महाकवि कुमारन आशान की काव्यकृतियों में अभिव्यक्त नाटकीयता पर उनकी पुस्तक अपने ढंग में प्रामाणिक है । एक और बहुचर्चित कृति है - 'अभिनय का रसतंत्र' (Chemistry of Acting) नाट्य रचनाओं के अनुवाद में भी उनकी बडी पकड रही ।

व्यक्तिगत व्यवहार में वे अत्यंत अनौपचारिक थे खुले दिल के थे । स्वाभिमानी होने के कारण प्रोड्यूसेर्स के सामने 'चान्स' की भीख कभी नहीं माँगी । जीवन की अंतिम वेला में उन्हें फ़िल्म की चमत्कारी-व्यावसायिक दुनिया की भाग-दौड़ में अपने को वंचित रखना पड़ा । दूरदर्शन के चैनलों में काम करते वक्त घंटों एकांत में बैठकर शराब पीते थे । शराब उनक व्यसन था । नगरी मित्रों के संग में शराब पीने की कमज़ोरी से बच नहीं पाए ।

प्रगतिवादी विचारधारा के सहयात्री थे श्री. मुरली । फिर भी उनके मन में आध्यात्मिक साधाना की चिनगारियाँ सुलग रही थीं । योग विद्या व तांत्रिक विद्या पर उनकी पहचान अलग थी । 'दृश्यवेदी' कथकली समिति के प्रतिमाह-समारोह में उनकी उपस्थिति की ताज़ी स्मृतियाँ इन पंक्तियों के लेखक को हैं। सन् १९८१-८५ की अवधि में प्रो. सी. जी. राजगोपाल जी के सौमनस्य से मेरी मुलाकात मुरली जी से हुई । मैं एम.ए. का छात्र था । वे केरल विश्वविद्यालय के कर्मचारी थे । दो-एक साल पहले वैलोप्पिल्ली संस्कृति भवन में आयोजित काव्य समारोह में रंगपट के महानट से फिर मेरी भेंट हुई । वही हसीन-शान्त-गंभीर चेहरा । वही आत्मीय बर्ताव ! साक्षात्कार की रंगीन तस्वीरें मेरे मन में आज भी सुरक्षित हैं ।

कोल्लम जिले के कुडवट्टूर गाँव में सन् १९५३ को जन्मे श्री. मुरली के प्रबल अभिनेता के व्यक्तित्व को गढ़ने में गाँव के माहौल सहायक रहे । गत तीस साल से वे तिरुवनन्तपुर शहर के साँस्कृतिक जीवन के, विशेषकर रंगमंच की मुख गतिविधियों के संवाहक रहे !

स्मृतिशेष महान रंगधर्मी कलाकार मुरलीजी को संग्रथ परिवार की श्रद्धांजलियाँ ।

डॉ. एम. एस. विनयचन्द्र

संग्रथन

हिन्दी विद्यापीठ (केरल) की
मुख-पत्रिका

हिन्दी विद्यापीठ,
टि. सी. १६/१६५८, जगती,
तिरुवनन्तपुरम-695 014
केरल।

(मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) भारत सरकार के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित)

संस्थापक संपादक :
स्व. पी. जी. वासुदेव

मुख्य संपादक :
डॉ. वी. वी. विश्वम

संपादक :
डॉ. एम. एस. विनयचन्द्रन

प्रकाशक :
एम. एस. जयमोहन

सह संपादक :
डॉ. जे. बाबु
डॉ. पी. जे. शिवकुमार

केरल के विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त

वर्ष : 23 अंक : 2 अगस्त : २००९

मूल्य : दस रुपये मात्र वार्षिक चन्दा : सौ रुपये मात्र

आजीवन सदस्यता शुल्क : एक हज़ार रुपये मात्र

फोन : 0471 - 2327197, 2558143, 2453930

सम्पादक मण्डल

डॉ. नीलंपेरूर सुकुमारन
डॉ. नन्नियोडु रामचन्द्रन
डॉ. एच. परमेश्वरन
डॉ. के. जी. चंद्रबाबु
प्रोफ. ए. मीरा साहिब
प्रोफ़. एम. एस. जयमोहन
डॉ. के. मणिकंठन नायर
श्री. एस. बिनोज
श्री. सूर्यबली प्रसाद
डॉ. बी. अशोक

इस अंक में...

जनाब पाणक्काड मुहम्मदलि शिहाब तङ्ङल	संपादकीय	3,4
माधविक्कुट्टी - अनार की ख़ुशबू व चिडिया की महक	प्रो. टी. के. प्रभाकरन	5
उत्सव (कविता)	तेज राम शर्मा	10
पारिवारिक शब्दावली निर्माण	डॉ. कृष्णपणिक्कर	11
संस्मरणों व रेखाचित्रों में व्यक्त महादेवी का आत्मपक्ष	सुनील सूद *सुनीला*	14
जादू का कालीन : बालश्रमिकों की दर्दभरी दास्तान	डॉ. मिनी जॉर्ज	17
पारिस्थितिक विमर्श ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में	डॉ. ए. के. सुधर्मा	20
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में दहेज प्रथा	डॉ. रमणी वी. एन.	27
हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि	डॉ. सी. जे. प्रसन्नकुमारी	31
लीलाधर जगूडी की कविताओं में सामाजिक यथार्थ एवं विद्रोहात्मकता	डॉ. गायत्री. एन.	35
दूसरी कमला (कहानी)	डॉ. उषाकुमारी. के. पी.	39

मुखचित्र : स्वर्गीय पाणक्काड मुहम्मदलि शिहाब तङ्ङल

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री रचनाकारों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक उससे सहमत हों, यह आवश्यक नहीं ।

जनाब पाणक्काड मुहम्मदलि शिहाब तङ्ङल (१९३६-२००९)

सन् १९३६ के मई महीने में पाणक्काड मुहम्मदलि शिहाब तङ्ङल का जन्म हुआ था। पाणक्काड उनके गाँव का नाम है । यह गाँव केरल के मलप्पुरम जिले में कडलुण्डी नदी के किनारे बसा है । आज़ादी केलिए लडने की प्रवृत्ति उनके खून में पूर्व-संस्कार के रूप में वर्तमान थी । २००९ अगस्त पहली तारीख़ को अकस्मात उनका निधन हुआ । पैंतीस सालों से वे मुस्लीम लीग के अध्यक्ष रहे थे । स्नेह और समभावना के संदेशवाहक के रूप में लोग उनका बडा आदर करते थे।

केरल के राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में तङ्ङल की गहरी पैठ थी । उनके प्रपितामह सय्यद हुसैन आट्टकोया तङ्ङल ने १८८० में ही विलायती शासन के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई थी । उनका पौत्र था शिहाब तङ्ङल के पिताजी पी.एस.एस.ए. पूक्कोय तङ्ङल। माता आइशा बीबी थी। बचपन की देशी शिक्षा के बाद उन्होंने मिश्र में जाकर कोलेज की पढाई (१९५८-६१) आरंभ की । वहाँ के केयरो विश्वविद्यालय से अरबी में उन्नत उपाधि १९६६ में प्राप्त कर ली । तीन साल की 'सूफ़िसम' कोर्स की पूर्ति भी उन्होंने वहाँ से की थी । उनके गुरु थे शेख़ अब्दुल अलीम मुहम्मद । माली द्वीप के राष्ट्रपति मअमून अब्दुल ख़यूँ उनके सहपाठी थे । जब भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने मिस्र की सैर की तब वहाँ उनका स्वागत करनेवाले छात्रों में तङ्ङल भी थे । ईजिप्ट के राष्ट्रपति आदरणीय जमाल अब्दुल नासर और मार्शल टिट्टो से वे परिचित हो गये थे । बाद के राष्ट्रपति अनवर सादत्त से भी उनका निकट संपर्क था ।

अरब साहित्य के प्रतिभावान लेखक अब्बास महमुदुल अख़ाद, नजीब महफ़ूस, त्वाहा हुसैन आदि से पढाई के समय में ही वे परिचित थे । केरल के 'बेपूर सुलतान' का-सा व्यक्तित्व था अब्बास महमुदुल अख़ाद का। इनके साथ तङ्ङल साहित्य चर्चा किया करते थे। अलक्साण्ड्रिया के मेडिट्टरेनियन समुंदर के किनारे बैठकर अपने बचपन का यादों में खोनेवाले उस छात्र को केयरो विश्वविद्यालय का वह परिवेश जल्दी ही भूल नहीं सकता। सालों बाद । १९९० को केयरो में आयोजित World Academy of Arts & Culture के ग्यारहवें कवि-सम्मेलन में भाग लेने केलिए जनाब तङ्ङल को न्योता आया था ।

ईजिप्ट के अल-असहर विश्वविद्यालय में अध्यापक बनना ही उनका अभीष्ट था । लेकिन पिता ने आग्रह किया तो दस हज़ार की नौकरी छोड उन्हें केरल में लौट आना पडा । जनाब तङ्ङल केरल के मुसलमानों के बीच एक नई रोशनी लेकर ही आये थे । उनके हाथ में ऐसा एक मशाल था जो अंधेरे में भटकनेवाले केरल के मुसलमानों का मार्ग प्रशस्त करने के काबिल था । कोहरे से आच्छादित धुंधुलापन दूर हटता गया, और सर्वत्र चाँदनी फैलती गयी । आध्यात्मिक आचार्य की हैसियत से मानवता को निर्भयता का संदेश देकर उन्होंने आदर्शपूर्ण जीवन बिताया उनके मुँह से निकली वाणी फूल के समान खिलकर सब कहीं सौरभ बिखेरती रही। चालीस वर्षों तक वे राजनीति से जुटे रहे और जनसाधारण विशेषकर अपने धर्मावलंबियों की सेवा में डूबे रहे । सपना देखने की आदत लोगों में उन्होंने जगा ली । समस्त लोगों के सुखमयजीवन की आशा वे करते थे । गरीबों की समस्याओं के लिए 'दुआ' का शांतिमंत्र देनेवाले थे वे । अनाथों को अभय देने में, चाहे अन्य धर्मावलंबी ही क्यों नहीं वे कभी हिचकते नहीं थे । वे धार्मिक नेता ही न हो नवोत्थान के अच्छे उन्नायक भी थे ।

जनाब तङ्ङल केरल के ही नहीं, दुनिया भर के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हैं । उनका व्यक्तित्व कुछ अलग है और उनकी आत्मीयता अद्भुत है । धार्मिक एकता बनाये रखने केलिए आपने क्या-क्या नहीं किया । उन्हें स्नेह और शांति का पर्याय बतायें तो उसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी । उनका हृदय विशाल था और वे कर्मकुशल थे । कहते हैं कि वे इस्लाम के पैंगबर मुहम्मद नबी की चालीसवीं परंपरा के व्यक्ति हैं। उनके पास रोगियों केलिए प्रार्थना, इलाज, दवा, आशीर्वाद सब कुछ थे और वे दीन दुःखियों के मार्गदर्शक भी थे। आठों पहर सबों केलिए उनका दरवाज़ा खुला रहता

पाठकों के पत्र

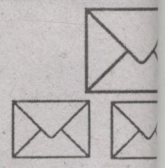

डॉ. सेराज खान बातिश
३ बी, बंगाली शाह वारसी लेन, दूसरा तल्ला, फ्लैट नं. ४, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३

मान्यवर,

पत्रिका का मई ०९ अंक शिमला में डॉ. जे. बाबू द्वारा प्राप्त हुआ । खुशी है कि आप लोग हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं; और निरंतर पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं। कविता 'भूख' तथा लघुकथा ('सराहना') बहुत अच्छी है । इसके साथ प्रेमचंद और राहुल पर समीक्षात्मक लेख भी खूब हैं । आश्चर्य होता है कि आप अपने सीमित संसाधनों में भी इतनी अच्छी और नियमित पत्रिका निकाल रहे हैं ।

इस अंक के लिए बधाई

धन्यवाद,

आपका

सेराज खान बातिश

* * * * *

डॉ. कमल किशोर गोयनका
ए-९८, अशोक विहार, दिल्ली।

प्रिय प्रो. जयमोहन,

संग्रथन मई में प्रेमचंद पर आपका लेख पढ़ा तो मुझे प्रसन्नता हुई कि आपने रंगभूमि की आत्मा को ठीक प्रकार से समझा है । सूरादस का संघर्ष औद्योगीकरण तथा भूमि अधिकरण के विरुद्ध है और आपने इसका व्यापक विश्लेषण किया है । उ
उपन्यास के मर्म को पहचाना है और रं
की प्रासंगिकता को रेखांकित किया है
पक्ष पर इतना तार्किक एवं विस्तृत
इससे पहले मैंने नहीं देखा है । मैं
लिए आपको बधाई देता हूँ और
करता हूँ कि आप प्रेमचंद सम्बन्धी आ
को आगे बढायेंगे । क्या आपने प्रेमच
मेरी पुस्तकें देखी हैं ? रंगभूमि पर भी
एक पुस्तक है । इधर मेरी निम्न
छपी हैं: (१) प्रेमचंद : पत्रकोना (२)
पत्रकारिता के प्रतिमान।

शुभकामनाओं के साथ आप

कमल किशोर गो

था। चाहे राष्ट्रीय नेता हो, संवाददाता हो, सहायता और शरण केलिए आनेवाले हो, हँसते हुए स्वीकार करनेवाले दूसरे किसी मुसलमान मानव प्रेमी का दर्शन केरल के पूरे इतिहास में दुर्लभ है। इस जननायक के घर में प्रतिदिन सौ से अधिक लोग आते जाते रहते थे । विवाह संबन्धी समस्यायें, धन संबन्धी तर्क, अदालत के मुकद्दमे मस्जिद के शासन संबंधी मामले जैसी समस्याओं का हल वे क्षणों के आदर कर देते थे । उनके फ़ैसले में लोग संतुष्ट भी थे ।

केरल के प्रसिद्ध नेता अब्दुल रहिमान बाफ़की तंङ्ङल की पुत्री शरीफ़ा फ़ात्तिमा उनकी धर्मपत्नी थी। उनके पाँच संतानें हैं, तीन बेटे और दो बेटियाँ । खाडी, अमेरिका, ब्रिटन, ईरान, यमन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, इट्टली, सिंगापुर, पालस्तीन, मलेशिया आदि राज्यों की सैर से उन्होंने अपने ज्ञान व अनुभवों को समृद्ध बना लिया था।

१९७५ सितंबर में वे मुस्लीम लीग के अध्यक्ष पद पर आरूढ हुए । उनका आदर्श था - "भूल जाओ, क्षमा करो ।" केरल राज्य के चार सौ से अधिक मस्जिदों के खासी के रूप में वे काम करते थे । पचास से अधिक विद्यालयों और अनाथालयों के अध्यक्ष भी थे । धार्मिक सहिष्णुता एवं भावात्मक एकता के क्षेत्र में उनकी देन सराहनीय है । १९९२ में बाबरी मस्जिद के ढहने पर उन्होंने पूरे मुस्लिम समुदाय को सहिष्णुता से काम लेने का जो पाठ पढाया था अनुकरणीय है । मातृभाषा के अलावा अंग्रेज़ी, हिन्दी, अरबी, उर्दू, फ़ारसी, तमिल आदि भाषाओं पर भी उनका विशेष अधिकार थ

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति आदरणीय के.
नारायण के जीवन में स्फूर्ति और प्रेरणा भरनेवा
तङ्ङल भी एक थे । डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कला
भी उनकी गहन मित्रता थी। भूतपूर्व प्रधान मंत्री इं
गाँधी, राजीवगाँधी, वी. पी. सिह, पी. वी. नरसिं
आदि से उनका निकट परिचय था । प्रधानमंत्री
मनमोहनसिंह और कांग्रेस अध्यक्षा श्रीमती सो
गाँधी से वे निरंतर विचार विनिमय करते थे । अ
और अंधविश्वासों से प्रेरित आतंकवादी को उससे ह
ज्ञान और सत्य के मार्ग पर लाने का श्रम वे अंतिम
तक करते रहे ।

मलयाळम के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'चन्
का सर्वांगीण विकास उनका लक्ष्य था। वे अर
कविता करते थे । उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं - 'इ
की पत्रकारिता', 'सूयसकनाल और नासर पद्धति',
खालिद की आत्मकथा', 'इबनुसीना और पिर
'अलबरूनी की आत्मकथा', खलील जिब्रान की
श्मशान भूमि का अरबी से मलयाळम में अ
आदि।

कहना न होगा कि केरल की अमर विभूति
वे भी बडी श्रद्धा से गिने जाएँगे । अपने अ
व्यक्तित्व से उन्होंने केरल के जन-जवन में जो छाप
वह किसी भी संदर्भ में मिटेगी । नहीं, उनके प्रा
शांति केलिए हम - संग्रथन परिवार प्रार्थनारत

प्रोफ़. ए. मीरा स

माधविक्कुट्टी - अनार की खुशबू व चिडिया की महक

प्रोफ़. टी. के. प्रभाकरन*

अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कवयित्री, कहानीकार एवं उपन्यासकार माधविक्कुट्टी मलयाळम के उन अल्पसंख्यक लेखकों में हैं जो मलयाळम और अंग्रेज़ी में अनायास एवं अधिकार के साथ लिखते हैं और दोनों में उच्च स्तर भी रखते हैं । मलयाळम में वे माधविक्कुट्टी के नाम से लिखती हैं तो अंग्रेज़ी में कमलादास के उपनाम से । सन् २००१ में प्रकाशित अंग्रेज़ी काव्यसंग्रह 'या अल्ला' में कमला सुरय्या नाम प्राप्त है जो सन् १९९९ में उनके धर्म-परिवर्तन के बाद प्रकाश में आया था । अंग्रेज़ी में कमलादास ने अधिकांश कविताएँ ही लिखीं । कुछ संस्मरण, समाचार पत्रों केलिए लिखे कुछ स्तंभ तथा एकमात्र उपन्यास 'आल्फ़बेट ऑफ लस्ट' उनकी गद्यरचनाएँ हैं । अंग्रेज़ी में प्रकाशित कहानियाँ अधिकतर मलयाळम में लिखी कहानियों का भाषान्तर हैं । अंग्रेज़ी में कमलादास एक कवयित्री के रूप में विख्यात हैं । सन् १९८४ में इस रूप में ही नोबल पुरस्कार केलिए उनका नामांकन भी हुआ था। मगर मलयाळम साहित्य में माधविक्कुट्टी एक कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में जानी-पहचानी जाती है । मलयाळम के प्रमुख कहानीकारों में उनका भी स्थान है । अगर मलयाळम के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों की एक सूची बनायी जाय तो उस में प्रथम पाँच में माधविक्कुट्टी का नाम शामिल रहेगा । अंग्रेज़ी में लिखने के कारण उनके काव्य-साहित्य को विश्वस्तर पर जो प्रशंसा और मान्यता मिली वह मलयाळम में लिखे जाने के कारण उनका कथा-साहित्य प्राप्त नहीं सका, यह बडे दुःख की बात है । सातवें दशक के मध्य में उन्होंने अपना आत्मकथात्मक संस्मरण 'एन्टे कथा' प्रकाशित किया जिस से उन्हें ख्याति एवं कुख्याति दोनों मिलीं, कुप्रसिद्धि कुछ ज़्यादा मिली । मृत्युपर्यन्त वे विवादास्पद लेखिका रहीं। मलयाळम की एक साप्ताहिक पत्रिका में पचास खंडों में क्रमशः प्रकाशित होकर यह रचना आयी थी, और उसी रूप में पुस्तकाकार में भी मिलता है । सन् १९७६ में इसका अंग्रेज़ी संस्करण निकाला गया । संवेदना और शिल्प की दृष्टि से परंपरागत धारणाओं को तोडती एवं छोडती औपन्यासिक रचनाएँ भी उन से मलयाळम को प्राप्त हैं । अपने बचपन के कुछ संस्मरण, डायरी के पन्ने आदि संस्मरणात्मक साहित्य का सृजन भी उनकी ओर से हुआ है । माधविक्कुट्टी एक ऐसी विशिष्ट भारतीय लेखिका है जिन्होंने अंग्रेज़ी और मलयाळम में समान अधिकार के साथ रचनाएँ की हैं। कमलादास अंग्रेज़ी में लिखनेवाली एक असाधारण भारतीय कवयित्री मानी जाती है, मगर मलयाळम में उनकी लोकप्रियता आत्मकथा तथा कहानियों के आधार पर है । एक ही रचनाकार दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में जाने और माने जाते हैं तो उसे कृतिकार की

सृजनात्मकता की ख़ासियत माननी है ।

माधविक्कुट्टी की रचनाओं में वस्तु और शैली की मौलिकता है । अपने कृतित्व केलिए उन्हें बहुत सारे पुरस्कार मिले हैं । अंग्रेज़ी काव्य संग्रह 'द साइरेनस्' (The sirens) केलिए एशियायी कविता पुरस्कार, 'सम्मर इन कलकत्ता' केलिए एशियाली देशों के अंग्रेज़ी लेखन केलिए 'केन्ट पुरस्कार', 'आशान वर्ल्ड पुरस्कार', अंग्रेज़ी संकलन 'कलेक्टेड पोयमस्' केलिए *साहित्य अकादमी पुरस्कार, वयलार पुरस्कार*, कहानी संग्रह 'तणुप्पु' केलिए *केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार* आदि उनमें कुछ हैं । 'पायटिक' पत्रिका तथा 'इल्लस्ट्रेटड वीक्ली' के कविता-विभाग आदि की संपादिका रहीं। सामाजिक नियमों के अनुसार जीने की विमुखता और स्पष्टवादिता ने उन्हें खण्डनात्मक समीक्षाओं का शिकार बना दिया । लेकिन उन्होंने किसी की परवाह नहीं की। जो साहस व निडरता वे दिखा सकीं, उतना पुरुष लेखक भी दर्शा नहीं सके । तभी तो विवादों में गोता लगाते हुए भी वे पाठकों के लिए निरन्तर प्रिय रहीं ।

संपूर्ण भारतीय साहित्यिक परिदृश्य में सामान्यतया तथा भारतीय-अंग्रेज़ कविता-लेखन के संदर्भ में विशेषतया कमलादास की अत्यन्त विशिष्ट और अनुपम आवाज़ थी । अपनी कविताओं में वे विलक्षण किन्तु सीधा ग्राह्य नारी संवेदना और स्पष्ट, सहज एवं अनावृत मुहावरा लाती है । उनकी कविता, खोखले वैवाहिक बन्धन, जो वे खोल नहीं पायी, के मज़बूत अस्वीकार की रचनाएँ हैं । कमलादास का जन्म एक साहित्यिक परिवार में हुआ था । उन के बडे मामा नालाप्पाट्टु नारायण मेनोन मलयाळम के प्रसिद्ध लेखक थे । माता नालाप्पाट्टु बालामणियम्मा जानी-मानी कवयित्री थी । पिताजी मलयाळम के प्रमुख राष्ट्रीय समाचार पत्र 'मातृभूमि' के प्रबन्ध संपादक थे । कमलादास की साहित्यिक रुचि पैतृक थी, जैविक थी । उनकी विशि इसमें है कि उन्होंने परंपरा के बोझ को उतार पे और साहित्य के क्षेत्र में अपना स्वतंत्र और पृ अस्तित्व बना रखा । उनकी माँ की कविताएँ विशु की कोटि में आती हैं । सामाजिक मर्यादाओं नियंत्रित इस पवित्रता के बन्धन को तोडकर कमला रचना के क्षेत्र में उतरी । पाप-पुण्य, पवित्रता-अपवि की परंपरागत धारणाओं को अपने रचनाकर्म प्रभावित करने का अवसर उन्होंने नहीं दिया । वि की जड यह थी । अंग्रेज़ी में उनकी रचनाएँ ये हैं - १९६४ में प्रकाशित 'द साइरेनस्', १९६५ में प्रका आयी 'सम्मर इन कलकत्ता' १९६७ में 'द डिसेन्टेड १९७३ में 'द ओल्ड् प्ले हाऊस एण्ड अदर पोय १९८५ में 'आनमलाय पोयम्स', १९९६ में 'ओनल सोल नोस हौ टु सिंग' तथा २००१ में 'या अल्ल ये सारी कृतियाँ काव्य-संकलन हैं । एक उप 'आलफबेट ऑफ लस्ट', आत्मकथा 'एन्टे कथा अंग्रेज़ी संस्करण 'मै स्टोरी' तथा मलयाळम में लि कुछ कहानियों का अंग्रेज़ी अनुवाद भी प्राप्त हैं । है, अंग्रेज़ी में कमलादास का कवि रूप ही प्रमुख

एक क्रान्तिकारी कवयित्री के उदय की सू देते हुए उनके पहले काव्य-संकलन का प्रकाशन था । उनकी रचनाएँ मुख्यतः प्यार केलिए नारी तडप और उन पर लादे गये सामाजिक नियंत्रण प्रतिबिंब हैं। कलमादास की अद्भुत ईमानदारी एवं प्यार के सूक्ष्म अन्वेषण तक व्याप्त है । 'सम्म कलकत्ता' संग्रह की एक कविता 'आन इन्ट्रोडक्श कवयित्री कहती है - "मैं हर नारी हूँ । जो प्या तलाश में है ।" (I am every / woman who s love) संपूर्ण नारी-समाज के साथ तादात्म्य प्राप्त की लालसा इस में दर्शनीय है । सार्वजनीनता व

भाव उनके काव्य में सर्वत्र व्याप्त है । वे कई भाव और चेहरे की कवयित्री हैं । मुक्तप्रेम की लेखिका है । प्रेम वह आधार है जिस के चारों ओर उनकी कविता घूमती है । प्रेम के भौतिक, आध्यात्मिक एवं भावात्मक रूप उनकी कविता में प्राप्त है । विवाहेतर संबन्धों की जब वे बात करती हैं तब विश्वासहीनता या व्यभिचार का समर्थन नहीं करती । स्त्री-पुरुष संबन्धों के एक ऐसे प्रकार की वे तलाश में हैं जो स्त्री को प्यार और सुरक्षा दोनों प्रदान करे । सच्चे प्यार की अपनी इस खोज को कवयित्री एक मिथकीय ढाँचा देकर उसका राधा-कृष्ण या मीरा-कृष्ण के प्रेमसंबन्धों से समीकरण करती है । 'द डिसनर्टेस' संग्रह की कविता 'द मागोट्स' की ये पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं ।

"At sunset, on the river bank, Krishna
Loved her for the last time and left .....
That night in her husband's arms, Radha felt
So dead that he asked, what is wrong
Do you mind my kisses, love ? And she said
No, not at all, but thought, what is
It to the corpse if the maggots nip ?"

(सूर्यास्त के समय नदी किनारे कृष्ण ने
उसे अंतिम बार प्यार किया और चला गया ।
उस रात अपने प्रियतम की बाहों में, राधा
इतनी निर्जीव लगी कि पति ने पूछा - क्या बात है प्रिये
तुझे मेरे चुंबनों से एतराज है ? और उसने कहा
नहीं, नहीं, मगर मन में सोचा - अगर कीडे काटते हैं
तो लाश को उस से क्या लेना-देना?)

खोये हुए प्यार का कितना सजीव वर्णन है ! कमलादास के काव्य का मुख्य और महत्वपूर्ण विषय स्त्री-पुरुष संबन्धों का वर्णन है । यह उल्लेख बहुत हद तक वैयक्तिक होते हुए भी साधारण नर-नारी के साधारण जीवन के लिए भी सही है । पाँच दशकों के पहले जब उन्होंने लिखना शुरु किया तब जिस विषयवस्तु को चुना वह बीसवीं शताब्दी के मध्य में जीनेवाली एक भारतीय नारी केलिए एकदम साहित्यिक थी । कमलादास की अंग्रेज़ी कविताओं का अनूठापन उनमें चित्रित विवाहेतर संबन्ध नहीं, किन्तु उनकी भावनाओं की चंचलता, तीव्रगति से बदलने और नये आकार लेने की क्षमता तथा सुरक्षा, आक्रमण या व्याख्या के नये तेवर हैं । कवयित्री ने ऐसे क्षेत्रों को खोल दिया जो पहले बहिष्कृत या उपेक्षित समझे गये थे उन्होंने दिखा दिया कि भावनाओं को उनके सही रंगों में कैसे पेश किया जा सकता है । जीवन की उलझनें उनकी कविताओं में समग्रता के साथ पकडी गयीं । कई कविताओं में अपने बचपन का भोलापन, जन्मदेश का पुराना मायका आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन है । उन्नीसवीं शताब्दी का वाक्य विन्यास, रोमांटिक प्रेम और संवेदना को कमलादास ने इस तरह दफना दिया जैसे किसी भारतीय नारी ने इसके पूर्व नहीं किया । परंपरागत रूप से निजी माने गये अनुभवों को सार्वजनीन बनाकर कवयित्री ने संकेत दिया कि नारी की चाह और हानि की वैयक्तिक भावनाएँ सारे स्त्री-समाज की सामूहिक पूँजी हैं। प्रेम की दुनिया में नारी अछूत है, अस्पृष्य है । समाज जिन बातों को गन्दा घोषित करता है उन्हीं को देने के लिए नारी विवश है । समाज उस से उन्हीं की माँग करता है । समाज के इस दुहरे चेहरे का पर्दाफ़ाश कमलादास की कविताओं में किया गया है । उनके काव्य-संकलन 'द सम्मर इन कलकत्ता' के प्रकाशन के साथ ऑक्सफ़ार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने घोषणा की - "झूठे बहानों के भरोसेमन्द सलाहकार तथा क्षयोन्मुखी सदाचार के बिसाती अपनी दूकान बन्द करके पीछे के दरवाज़े से भाग गये ।" भारतीय-अंग्रेज़ी कविता के क्षेत्र में एक

नवयुग का सूत्रपात हुआ । उनकी निडर और ईमानदार आवाज़ ने भारतीय अंग्रेज़ी लेखन को ऊर्जा प्रदान किया और बाद की भारतीय लेखिकाओं की पीढी को प्रेरणा दी ।

अपनी कविताओं के ज़रिए कमलादास सारे संसार में विख्यात हुईं । मगर उनके कहानीकार और उपन्यासकार का जो अप्रतिम रूप था वह संसार की आँखों से ओझल रहा । सच पूछा जाय तो उनकी कहानियाँ कविताओं की तुलना में बडे ऊँचे स्तर की हैं। खेद है, उनकी कहानियों के रसास्वादन का आह्लादकारी अनुभव मलयाळी पाठकों तक सीमित रहा । मलयाळम कहानी साहित्य में अपनी रचनाओं के ज़रिए मधविक्कुट्टी जो विभ्रमात्मक परिवर्तन लायी, वह अभूतपूर्व था। रोमांटिक होते हुए भी अपनी पीढी को क्या, आधुनिकोत्तर पीढी को भी वे गहराई से प्रभावित कर सकीं। उन्होंने जो पथ प्रशस्त किया वह निर्जनता तथा साहसिकता का राजपथ था । साहित्य जो पुरुष सत्तात्मक नियमावली के अनुसार बनता जा रहा था उसे नारी अस्तित्व की नयी ज़मीन और नया आकाश दिखाकर लेखिका ने और दीप्त और व्यापक बनाया । साधारण से साधारण अनुभव नारी की दृष्टि से जब प्रस्तुत किये जाते हैं तब चिरपरिचित चित्रण से वे कितने भिन्न होते हैं, परंपरागत व्यवस्था के खिलाफ़ तथा क्रान्तिकारी होते हैं, यह पहचान माधविक्कुट्टी की कहानियों ने प्रदान की । नारी के शरीर और मन जो पहले पुरुष-कामनाओं को शान्त करने के उपादान मात्र माने गये थे, परंपरा से बेरोक चली आयी मूल्य संकल्पनाओं के प्रति संघर्ष के प्रबल हथियार के रूप में उन की कहानियों में प्रकट हुए । पाठकों की मूल्य संबन्धी धारणाओं में झटका देकर परिवर्तन लाने का श्रेय माधविक्कुट्टी को है। एक महान लेखिका के आगमन की सूचना देकर पाँचवें दशक में उन कहानियाँ प्रकाश में आयीं । उनकी कहानियों की नारी संवेदना है जो उन्हें अपूर्व शक्ति देती है । ले अपने को एक स्त्रीवादी लेखक मानने के वे विरोधी हैं । वे मुख्यधारा-लेखिका हैं और भा की दृष्टि से पश्चिम के स्त्रीवादी धारणाओं से दूर खडी हैं। अपनी कहानियों में उन्होंने नार प्रेरणाओं का, निराशाओं का, तीव्र यौन-कल्प का बन्द दरवाज़ा खोल दिया और इस प्रकार अस्तित्व (नारी अस्तित्व) के कच्चे पहलू को दिया । उनकी कहानियों के केन्द्र में हमेशा प्यार तडपती पीडित नारी रहती है जो धोखा खाने के शोषण के शिकार बनने के लिए एवं उपेक्षित ह लिए अभिशप्त है । परंपरागत कहानियों के चित्रण में बहुधा प्राप्त आत्मदया के स्थान प विनाशकारी, प्रतिहिंसक कल्पना को प्रतिष्ठित जिस ने प्यार, लैंगिकता एवं मृत्यु तक को मि धरातल से मुक्त किया ।

सन् १९६० में मलयाळम के विख्यात स एवं भूतपूर्व शिक्षामंत्री प्रो. जोसफ़ मुंडश माधविक्कुट्टी को 'अश्लील कहानीकार' घोषित मलयाळम के बहुतेरे साधारण पाठकों माधविक्कुट्टी 'अश्लील लेखिका' (Porn write मगर इस धारणा का आधार सातवें दशक के प्रकाशित उनकी आत्मकथा 'एन्टे कथा' था दूसरी बात है कि इन में कितनों ने गंभीरता रचना पढी । सर्वाधिक बिकी गयी पुस्तकों क में यह कृति एकाएक अव्वल नंबर पर आयी, उसकी अपेक्षाकृत खुली लैंगिकता के का माधविक्कुट्टी के अनुसार "यह देश के नैतिक के द्वारा बलिदान की गयी एक मामूली

लडकी की अत्यन्त गंभीर एवं बडी ही दुखान्त कथा" है । उनके व्यक्तिगत एवं सृजनात्मक साहस की दाद देते हुए मलयाळम के लोकप्रिय आधुनिक कवि बालचन्द्रन चुल्लिक्काट ने उन्हें "हमारे समय के प्रथम भावमय क्रान्तिकारी स्त्रीवादी लेखक" कहा था । पीत पत्रकारिता ने उन्हें 'मलबार की प्रेम की रानी' (Love queen of Malabar) पुकारा । यह होहल्ला सातवें दशक में हुआ था । मगर 'एन्टे कथा' के प्रकाशन के वर्षों पहले, केरल के प्रथम मार्क्सवादी मंत्रिमंडल के सदस्य प्रो. मुंडश्शेरी ने माधविक्कुट्टी पर अश्लीलता का आरोप लगाया था । स्पष्ट है, ये प्रगतिवादी समीक्षक पुरुषसत्तात्मक सामाजिक नियमों के गड्ढे में कितने गहरे डूबे थे । अन्यथा पुरुषवरीयता की नींव को सुदृढ करने के इरादे से निर्मित सदाचार नियमों की शिकार, शताब्दियों से दमित-पीडित नारी की प्रतिनिधि माधविक्कुट्टी की कहानियों के नारीपात्रों के आत्मरुदन वे क्यों सुन नहीं सके ? वास्तविकता यह है कि माधविक्कुट्टी के गंभीर लेखन का अपहरण करके पत्रकार-आलोचकों ने उनके जीवन को वर्ण्यविषय बनाकर उसे उत्तेजनापूर्ण दिखा दिया । उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की उपेक्षा की । बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक यह स्थिति बनी रही जब लेखकों और आलोचकों की एक नयी पीढी उभर आयी जिसने माधविक्कुट्टी के लेखन को पढा, परखा, समझा और उसे उचित मान दिया । आज सारा जोसेफ़, ग्रेसी, चन्द्रमती, इन्दु मेनोन, सितारा, प्रिया आदि ने जो कहानियाँ लिखी हैं उन केलिए पचास साल पहले माधविक्कुट्टी ने ज़मीन तैयार की थी । शिल्प की दृष्टि से कहानी को एक जादुई स्पर्श वे दे सकीं । प्रो. एम. अच्युतन ने अपने ग्रंथ "चेरुकथा-इन्नले-इन्नु' (कहानी-कल और आज) में लिखा - "कुहरे की तरह चेतन व अचेतन मन की सीमाओं को लाँघती, मंत्रमुग्ध आकर्षणीयता भरी ऐसी कहानियाँ मलयाळम में और किसी ने नहीं लिखीं ।" बनावटी नियंत्रणों से मुक्त जीवन का सपना देखनेवाली कहानीकार भाषा के प्रयोग में भी वही आज़ादी चाहती नज़र आती हैं ।

अक्सर माधविक्कुट्टी की तुलना सिलविया प्लात से की जाती है । सिलविया की चर्चित रचनाएँ अजनबीपन, मृत्यु तथा आत्मनाश की भावनाओं से भरी पडी हैं । उनका लेखन अपराध-स्वीकृति का माना गया है । सृजन संबन्धी अपने विचारों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा - "प्रेम से बाहर होना असंभव है । प्रेम इतनी शक्तिशाली भावना है कि अगर एक बार आप को वह आवृत करता है तो फिर हटेगा नहीं । सच्चा प्रेम अमर है ।" उन्होंने आगे जोडा - "कहा जाय तो जीवन में सब कुछ लिखने योग्य है यदि ऐसा करने का सीमातीत साहस तुममें है ।" माधविक्कुट्टी की रचनाओं में भी समान वैचारिकता दर्शनीय है । उनकी कृतियों में प्रेम मुख्य विषय के रुप में उपस्थित है । उनके पात्र यह रटकर चलते हैं कि संसार का सारतत्व प्रेम ही है । अपने लेखन के ज़रिए उन्होंने यह भी प्रमाणित किया है कि साहस की उन में ज़रा भी कमी नहीं है । उनकी जैसी निडरता बहुत कम लेखकों में पायी जाती है । इस दृष्टि से सिलविया प्लात से उनकी तुलना बहुत कुछ सही लगती है ।

जितनी ख्याति माधविक्कुट्टी विदेशों में प्राप्त कर सकीं उतनी शायद ही कोई भारतीय या भारतीय-अंग्रेज़ लेखक पा सके । उनकी मृत्यु का समाचार देते हुए 'न्यूयार्क टाइम्स', 'द गार्डियन', 'द टाइम्स', 'न्यूज़ स्कोटमान' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने उनके जीवन और कृतित्व पर अपेक्षाकृत लंबी आलोचनाएँ प्रस्तुत कीं । भारत के बाहर भी जाने-पहचाने मलयाळम के

कविता

उत्सव

तेज राम शर्मा*

बसंत बसंत नहीं होता पहाड़ पर
फिर भी टहनियों पर जमी बर्फ़ झाड़ कर
देवदार उतरेंगे शिवरात्री के मेले में

जब झोंपड़ी की काली दीवारें पुतेंगी सफ़ेद
बरूस की बंदनवार खिंच जाएगी चारों ओर
नई पत्तियों का घना साम्राज्य
सूरज को रोके
माथे की मोती बिखरी चमक से
उल्लसित रखेगा
बिशु के उत्सव में उमड़ी भीड़ को

इस मुसलाधार में शृंखलाओं को तोड़
जीवन की कंस सी कारागार से
कृष्ण के साथ ही निकल पड़ेंगे लोग
जन्माष्टमी का उत्सव मनाने

गांव-गांव करयाले की धूम में
छलछलाती गोरियों की हंसी से
जल-भुन जाएगी शरद चांदनी

अमावस की काली रात में
हेमन्त तोड़ लाएगा टिमटिमाते तारे
लड़ी में पिरोयेगा घर के चारों ओर
देव प्रांगण में

धूने के चारों ओर
सब के साथ झूमेगा नाटी में

उत्सव नहीं दबेगा बर्फ़ तले शि
उसे उत्तरायण में
सूरज के मुड़ने की रहेगी उम्मी
संक्रांति में घी-खिचड़ी खा कर
बर्फ़ को चुनौति देगा
यहां पहाड़ पर कोई नहीं पूछत
कि साल भर ऋतुएं
जीवन से किसे ठेलने
उमड़ती होंगी
उत्सव मनाने

*श्री रामकृ
अनाड़ेल, शिमला

लेखक श्री ओ. वी. विजयन, डॉ. अय्यप्प पणिक्कर आदि को यह सौभाग्य नहीं मिला था । भारतीय लेखकों से सदा मुँह मोडे खडे होनेवाले पश्चिम के समाचार माध्यमों ने कमलादास या माधविक्कुट्टी या कमला सुरय्या की मृत्युवार्ता आदर के साथ प्रकाशित की । उनके कृतित्व का यह करिश्मा ही माना जाएगा। विवादों में जन्मी-पली-मरी माधविक्कुट्टी सदा साहसी तथा स्पष्टवक्ता रही । परंपरित चेतनाओं से आबद्ध उस सनातनी समाज की उन्होंने निरन्तर आलोचना की जिस ने परंपरागत मान्यताओं को तोडती या छोडती उनकी जीवनशैली और रचनाशीलता पर निर्दय प्रहार किया । इस में कोई सन्देह नहीं कि विचारों के क्षेत्र में वे अपने सहयोगी लेखकों से बहुत आगे थीं आरंभकालीन कहानी 'पक्षियुटे मणम्' (चि महक) से गुज़रते हुए वर्तमान पाठकों को य नहीं होता कि यह रचना लगभग पचास स लिखी गयी थी । अपनी आंतरिक आवाज़ क कर नारी सत्व की तलाश में निकली लेखिक की अस्वतंत्रता एवं पराधीनता के साथ उस की तीव्र कामना का जो मार्मिक चित्रण कि आज ज़्यादा सही लगता है क्योंकि नारी की इस लंबी अवधि में भी कोई बडा परिवर्तन है । सचमुच वे अपने समय के बहुत आगे थीं। विवादों की यही जड़ है ।

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण

डॉ. कृष्ण पणिक्कर*

हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिलाये जाने पर इसमें नये-नये शब्दों की एकदम सख्त ज़रूरत पड़ी । जनभाषा के राजभाषा बन जाने पर यह बिलकुल ज़रूरी माँग बन गयी है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए समान पारिभाषिक शब्दावली का विकास करने के इरादे से वर्ष १९५० में शिक्षा मंत्रालय ने पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की थी। इसके नेतृत्व एवं कर्तृत्व में शब्दावली-निर्माण कार्य का श्रीगणेश हुआ । शिक्षा क्षेत्र के सभी विषयों पर स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की शब्दावलियाँ प्रकाशित की गयीं ।

राजभाषा आयोग की सिफ़ारिश का अनुसरण करते हुए जारी राष्ट्रपति के विशेष आदेश के तहत, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना वर्ष १९६० में की गई । हिन्दी शब्दावली निर्माण कार्य इस निदेशालय को सुपुर्द किया गया। इस बीच, इस काम में तेज़ी लाने के लिए वर्ष १९६१ में वैज्ञानिक एवं तकनिकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई । सभी भाषायी क्षेत्रों के लब्ध प्रतिष्ठ विषय विशेषज्ञ एवं भाषाविद इस आयोग के सदस्य नामित किए गए ।

शब्द-निर्माण बड़ा पेचीदा काम है । एक ही शब्द के कई अर्थ कभी-कभी दिखाई पड़ते हैं । जैसे कि विज्ञान में charge को 'आवेग' शब्द स्थिर किया गया। इसके विपरीत मानविकी के अधिकांश शब्दों का अर्थ, विषयानुसार बदलता रहता है।

जैसे Charge का प्रशासन में अर्थ है - कार्यभार
लेखा में - व्यय
वाणिज्य में - उधार
राजनीति में - धावा

इस प्रकार अलग-अलग प्रसंगों में, अलग-अलग विषयों में charge का अलग-अलग अर्थ स्पष्ट है ।

शब्द संयुक्तियाँ बनाते समय भी अनेक प्रसंगों में मूल शब्द का पर्याय बार-बार बदलना पड़ता है । उदाहरणार्थ general शब्द का विभिन्न पर्याय देखिए :-

General election - आम चुनाव
General body - आम सभा
General principles - सामान्य सिद्धांत
General good - सार्वजनिक हित

स्पष्ट है कि शब्द-गठन का काम आसान नहीं । यह एक जटिल प्रक्रिया है । एक अर्थ के लिए अनेक शब्द आम बात है, विकसित और विकासशील भाषा में ।

Court के लिए न्यायालय, कचहरी, अदालत
Election - चुनाव, निर्वाचन, चयन
Government - सरकार, हुकूमत, शासन
Interest - रुचि, अभिरुचि, दिलचस्पी इत्यादि।

दैनंदिन व्यवहार के शब्दों के लिए प्रायः सभी प्रचलित पर्याय स्वीकार कर लिए गए हैं । शब्द भंडार की श्रीवृद्धि भाषा के विकास का द्योतक है। लेकिन शास्त्रीय अभिव्यक्तियों के लिए सर्वाधिक सटीक शब्द चुन लिया जाता है । नपे तुले शब्दों का ही प्रयोग इस वास्ते अभिकाम्य है । अंग्रेज़ी का अनुगामी होना समीचीन लगता है। अनेक संकल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए संस्कृत की प्राचीन शब्दावली उपलब्ध है। इनमें से सरल, सरलतर और सरलतम शब्दों को प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार कर लिया जाना अभिकाम्य है । नए-नए शब्दों

को, आयातित शब्दों का भी प्रयोजन निर्बाध रूप से करने की सलाह दी जाती है । तकनिकी साहित्य में समान रूप से व्यवहृत किया जाना ही इसका परम लक्ष्य है । अतः बे-रोक-टोक इन का प्रचार प्रसार व प्रयोग किया जाना है । प्रांतीय भाषाओं के प्रचलित शब्दों को भी खुले आम इस्तेमाल करने से हिन्दी की आभा-शोभा बढ़ेगी बेशक। उदाहरणार्थ छुट्टे के लिए तमिल मलयाळम का ('चिल्लरै') । जो भी हो अनुच्छेद ३५१ के अनुसार नए शब्द यथा संभव संस्कृत पर आधारित होना वांछनीय है । इनमें आवश्यकतानुसार रूप-परिवर्तन करने में हिचकने की ज़रूरत नहीं। यह मानी जानी बात है कि मुगल शासन काल के दौरान अरबी-फ़ारसी-उर्दू के अनगिनत शब्द हमारी भाषा में घुल-मिल गए हैं । यह समावेश समीचीन भी है । नए साहित्य लेखन एवं अनुसंधान-गतिविधियों के परिणाम स्वरूप नित्य नूतन शब्दों का आविर्भाव होता रहता है । अतः कोई भी शब्दावली अद्यतन नहीं, यह एक अविराम प्रक्रिया है । जीवित भाषा में नए-नए शब्द दिन ब दिन आते रहेंगे । सार्थक शब्दों का जमघट ही भाषा है ।

सूक्ष्मार्थ व्यंजना, पारिभाषिक शब्द निर्माण प्रक्रिया की जड़ है । अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को प्रचलित अंग्रेज़ी रूपों में ही लिप्यन्तरण द्वारा अपनाया जाना चाहिए ताकि विचार-विनिमय में एकरूपता बनायी रखी जा सके। जैसे :

Galvano Meter - गैलवेनोमीटर
Harmone - हार्मोन

न्यूटोन, इलक्ट्रोन, प्लूटोन आदि को ज्यों का त्यों रखना सर्वमान्य है और सर्वादरणीय व प्रचलित सिद्धांत है । उपसर्ग और प्रत्यय दो ऐसे साधन हैं जिनको धातु के आगे-पीछे जोड़कर हम सामान्य से विलक्षण अर्थ-व्यंजना कर सकते हैं । अन्यथा पर्याप्त कारण न होने पर हिन्दी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का प्रयोग, पुल्लिग में ही किया जाना है! नव शब्द गठन की प्रक्रिया में यथासंभव कठिन संधियों से बचकर चलना वांछनीय है । संप्रेषण तत्व को प्रधानता देकर, कामकाजी हिन्दी के शब्द भंडार को भरा पूरा किया जाना ही बेहतर है । अर्थ का अनर्थ होने न देने की बात पर सदा-सर्वदा ध्यान दिया जाना चाहिए ।

पारिभाषिक शब्द किसको कहते हैं ? जिन शब्दों के अर्थ की परिभाषा की गई हो वे पारिभाषिक शब्द हैं । पारिभाषिक शब्द वे हैं जिनकी सीमाएँ बांध दी गई हैं । बाकी सब साधारण शब्द हैं । अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित रूप से पारिभाषित होने के कारण ही, ये शब्द पारिभाषिक शब्द कहे जाते हैं । पारिभाषिक शब्द का अर्थ सुनिश्चित परिधि से स्पष्ट होना चाहिए । पारिभाषिक शब्द का एक हो । अंग्रेज़ी तथा अन्य अ पारिभाषिक शब्दों को ज्यं अथवा थोड़ा-बहुत अनुकू सरलीकृत करके हिन्दी जाए । हिन्दी ने काफ़ी विदे को पचा लिया है । वे श में घुल-मिल गए हैं । यह ज़ोर पकड़ रहा है । लेकि शब्दों से भाषा को क्लिष्ट न नहीं बनाया जाए । म अप्रचलित अन्य भाषा-अनुकूलन करके हिन्दी जाए। जैसे कि Academ अकादेमी ।

लेकिन हिन्दी प चयन करते समय सरल की परिशुद्धता और सुब खास ध्यान रखा जाना है संकल्पनाओं को व्यक्त करने का सामान्यतः सरल अनु जाना समीचीन है । वि प्रवृत्तियों से बचकर शब्द का कार्य किया जाना है भारतीय भाषाओं के पा शब्दों में यथा संभव अं एकरूपता लाना ही प्रमु होना चाहिए । अधिक प्रादेशिक भाषाओं में एक शब्दों को प्राथमिकता दी

इंजन, मशीन, मो पेट्रोल, डीसल, क्लोन, एि

को ज्यों का त्यों अपनाया जाना ही सिद्धांत होना चाहिए । साथ ही, अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण करके इस्तेमाल करने की प्रथा का प्रचार किया जाना है। विज्ञान या अन्य किसी शास्त्र विशेष में एक संकल्पना के लिए एक ही शब्द होना चाहिए । यथासाध्य पारिभाषिक शब्दों का आकार छोटा रहे ताकि प्रयोक्ता को सुविधा मिले। इसका पारदर्शी होना बेहतर है । पारिभाषिक शब्द में उर्वरता होनी चाहिए । अर्थात् उसे ऐसा होना है कि उनमें उपसर्ग, प्रत्यय आदि जोड़कर नए-नए शब्द गठित किए जा सकें। जैसे कि उर्वर, उर्वरता, उर्वरक आदि । इनके बीच में भ्रम होने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार स्रोत के आधार पर पारिभाषिक शब्दों का वर्गीकरण निम्नानुसार है।

१. तत्सम
२. तद्भव
३. आगत (विदेशी)
४. देशज
५. संकर

संरचना की दृष्टि से पारिभाषिक शब्द निम्नानुसार हैं :-

१. उपसर्गयुक्त
२. प्रत्ययायुक्त
३. समस्तपद
४. उपसर्ग प्रत्ययायुक्त
५. उपसर्गयुक्त समस्त पद
६. प्रत्ययायुक्त समस्त पद
७. उपसर्ग प्रत्ययायुक्त समस्त पद

सरलता और ग्राह्यता के अभाव के कारण अभिनव पाणिनी डॉ. रघुवीर के कुछ एक शब्द चल नहीं पाए; हास्यास्पद हो गए; टिक नहीं सके । अतः प्रयोग प्रचार-प्रसार से अपने आप हट गए । आवश्यकता, सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए इन शब्दों का चयनित प्रयोग ही भाषा वृद्धि के लिए अभिकाम्य है । उपसर्ग प्रयोग के उदाहरण :-

Super conductivity - अतिचालकता

Super Glacial - अधिहिमाना

जीवंतता से रिक्त टकसाली शब्द गढने का कोई लाभ नहीं टकसाली शब्दों की भरमार है । यह ठीक नहीं । खेद की बात है कि केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा जारी पारिभाषिक शब्दावली संग्रहों में परस्पर विषमता होने के कारण भ्रम व गड़बड़ होने की गुंजाइश लगातार बनी रहती है । जैसे कि Director - निदेशक, निर्देशक, संचालक, अधिकर्ता । क्लिष्ट नवनिर्मित शब्दों की अच्छी परख की जानी है । नए शब्दों का नए परिप्रेक्ष्य में मानकीकरण किया जाना है । भ्रम बहुलता के निराकरण भी किया जाना है ।

पता चला है कि गत सौ वर्षों में अंग्रेज़ी शब्द भंडार में हुई वृद्धि में से 90% वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का है । हर वर्ष १०-१५ हज़ार शब्द अंग्रेज़ी भाषा प्रयोग से बाहर जाते हैं । इस बीच २०-२५ हज़ार शब्द अंग्रेज़ी भाषा में नए जुड़ जाते हैं । यह जोड़-तोड़ (बढ़ोत्तरी) मुख्यतः पारिभाषिक शब्दों का होता है । अतः अंग्रेज़ी के नवागत शब्दों के समानार्थक हिन्दी शब्द साथ- साथ तैयार करते जाना है । अन्यथा, इस क्षेत्र में हमारे और अधिक पिछड़ जाने का डर है।

पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में यह परम प्रधान बात न भूली जानी है कि पारिभाषिक शब्दावली के रचाव, कसाव एवं परिष्कार के लिए उसमें परिवर्तन और परिवर्धन के लिए निर्मित शब्दावली का प्रचुर प्रयोग अध्यापक-अध्येता सामान्य विशेषजन द्वारा किया जाना अनिवार्य है । इस प्रक्रिया में नवनिर्मित शब्द कसौटी पर कसे जाएँगे और इन प्रयोक्ताओं के बीच से ही नए-नए सुलभ शब्द प्रयोग सामने आयेंगे । संक्षेप में, शब्द निर्माण एक सतत एवं सोद्देश्य प्रक्रिया है। अनादिकाल से अनंतकाल तक यह प्रक्रिया जारी रहेगी ।

शब्द एक भाषिक इकाई है और अर्थ शब्द की आत्मा है । ●

संस्मरणों व रेखाचित्रों में व्यक्त महादेवी का आत्मपक्ष

सुनील सूद 'सुनीला'

यहाँ आत्मपक्ष से मेरा अभिप्राय है वैयक्तिक संकेत । वैसे तो संस्मरण अथवा रेखाचित्र आत्म की उपेक्षा करके चल नहीं सकता क्योंकि इसमें प्रत्येक चरित्र अथवा चित्रित विषयप्रधानतः आत्म अनुभूति और आत्म प्रतीति के आधार पर ही अंकित होता है पर महादेवी की विशेषता यह है कि वे हर घटना के संदर्भ में आत्मविश्लेषण करती हैं ताकि उनका कथ्य पूरी तरह से स्पष्ट हो जाए । उन्होंने अपनी संवेदना के प्रेरक तत्वों का सर्वत्र स्पष्ट संकेत भी दिया है । अपने प्रिय पात्र घीसा का स्वरूपांकन करने के पश्चात् वे अपनी मनोभावनाओं को निष्कपट रूप से व्यक्त कर देती है । यहाँ न कुछ छिपा हुआ है न कल्पना से जोड़ा हुआ है । नारी-जीवन के प्रति महादेवी में जो आक्रोश, विद्रोह या करुणा का भाव है उसका भी उन्होंने यथेष्ट संकेत दिया है । उनके किशोर काल में कन्या-जन्म की सूचना पाते ही शहनाई वादकों, मंगल गायन करने वाली स्त्रियों को शोक का संकेत दिया जाता था । ऐसी परिस्थितियों की नारी के प्रति लेखिका की संवेदना स्वाभाविक है । उनके अनुसार करुणा की भाषा शब्दहीन होकर भी बोलने में समर्थ है । महादेवी के संस्मरण साहित्य में अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी व मेरा परिवार सुप्रसिद्ध हैं । इन्हीं में से कुछ और घटनाओं, वर्णनों, चरित्र चित्रणों से उनके 'आत्म पक्ष' पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रही हूँ। संस्मरणात्मक रेखाचित्र 'सोना हिरणी' का आरंभ देखिए - "सोना की आज अचानक स्मृति हो आने का कारण है : - मेरे परिचित स्वर्गीय डॉ. धीरेन्द्र नाथ वसु की पौत्री सस्मिता का पत्र ।" इस पत्र लेखिका को प्रेरित किया सोना हिरनी की मृत्यु की करुण कथा प्रस्तुति केलिए । संस्मरण की एक ओर बिल्ली गोधूली व फ्लोरा कुतिया व दूसरी ओर कुत्ते हेमन्त वसन्त के साथ लेखिका के आत्मीय संबंध का यथार्थ चित्रण लेखिका के आत्म पक्ष को सिद्ध करता है। ये वाक्य देखिये-"उसी वर्ष गर्मियों में मेरा बद्रीनाथ यात्रा का कार्यक्रम बना, प्रायः मैं अपने पालतू जीवों के कारण प्रवास में कम रहती हूँ देखरेख केलिए मौका रह आश्वस्त नहीं हो पाती । अनुरूप तो साथ थे ही इस फ़्लोरा को भी ले जाने क किया क्योंकि वह मेरे रहती । रेखाचित्र क सांकेतिक पंक्ति यह है हिरनी का करुण अंत देख निश्चय किया था कि नहीं पालूँगी परन्तु आज को भंग किए बिना इ प्राण जीव की रक्षा संभव

महादेवी की विधाओं में आत्म-संस्प्र प्रभाव है । उन्होंने प्रत्येक अपने जीवन के परिप्रेक्ष्य देखा है अतः उन चित्रों का तादात्म्य स्वाभाविक यह स्वीकार भी किया स्मृति-चित्रों में मेरा जी गया है । यह स्वाभावि मेरे भीतर की परिधि खड़े होकर चरित्र जैसा पाते हैं वह बाहर रूपांतर है । फिर जिस परिच लेखक अपने कल्पित

वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय केलिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करूँ ? स्पष्ट है कि महादेवी ने इन संस्मरणों में जीवन के सत्य और वास्तविकता की अनुभूतिमय अभिव्यक्ति की है । लेखिका की इस सफलता का सबसे बड़ा कारण है उनकी संवेदनशीलता जो उनके पारिवारिक जीवन तथा वातावरण का सुपरिणाम है । इस प्रकार साधना संकल्प और लोक कल्याण की भावना से युक्त ये संस्मरण व रेखाचित्र लेखिका के व्यक्तित्व और कृतित्व के विश्वस्थ विश्लेषण के आधार बन सकते हैं । उदाहरणार्थ उनकी अष्टं वर्गीय अवस्था का एक संस्मरण प्रस्तुत किया जा सकता है जहां वे साबन की तीज की एक घटना का उल्लेख करती हैं क्योंकि उसी के कारण उन्हें रंगीन कपड़ों से उदासीनता हो गई थी । "आज भी जब कोई रंगीन कपड़ों के प्रति मेरी विरक्ति के संबंध में कौतुक भरा प्रश्न कर बैठता है तो अतीत फिर वर्तमान होने लगता है कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगता है वह कितना करुण और कितना मूर्झाया हुआ होता है ।"

इन पात्रों से निजता का-सा संबंध स्थापित हो जाने के कारण ही उनकी व्यथा की स्थिति जहाँ अधिक भीषण है वहाँ लेखिका का क्षोभ भी तीव्रतर हो गया है । इसलिए अभिव्यक्ति सहज न रह कर व्यंग्य से आवृत हो उठी है । देखिए इस व्यंग्य का उदाहरण इसी सलज्ज कर्तव्य निष्ठ सबिया को लक्ष्य कर जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा - "आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेतीं ? सुनकर मेरा क्रोध उस जल के समान हो उठा जिसकी तरलता के साथ मिट्टी ही नहीं, पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती है । मुँह से अचानक निकल पड़ा यदि दूसरों के धन को किसी न किसी प्रकार अपना लेने का नाम चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हममें से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही जा सकती ।" इस वक्तव्य में लेखिका की निर्भीकता एवं स्पष्ट वादिता परिलक्षित होती है जो उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं ।

प्रयाग महिला विद्यापीठ के छात्रावास की छात्राओं के प्रति उनकी ममता एवं स्नेह का परिचय इन संस्मरणों में मिलता है । ज्वर पीड़ित एक छात्रा की चिन्ता में डूबी महादेवी की मनःस्थिति द्रष्टव्य है - "छात्रावास में टाइफ़ाइड़ में पड़ी सुदूर दक्षिण की एक बालिका का मुख मेरी बंद पलकों में किसी फ़ोटो की इनलार्जमेंट के समान बढ़ता चला जाता था । उसके साधारण स्थिति वाले माता-पिता इतना रुपया किस प्रकार पाते कि उसे देखने आ सकते । उसके लिए मन जैसे जैसे चिन्ताकुल होने लगा वैसे वैसे अपने ऊपर झल्लाहट बढ़ने लगी । जब मेरा शरीर इतना निकम्मा था कि इनके सुख-दुःख में दो चार रात जागना भी सहन नहीं तब किस बूते पर मैंने उन बालिकाओं को उनकी माताओं से इतनी दूर ला रखा है ।" कर्तव्य पूर्णता में ढील होने पर लेखिका की ग्लानि स्पष्ट है । करुणा जनित स्वभाव के कारण जीवन और जगत की करुण स्थिति में उनके हृदय का स्पन्दन उनकी प्रत्येक रचना में झंकृत होता है । सत्य और समूह की रक्षा केलिए विद्रोह की ज्वाला को उन्होंने अपनी त्यागमयी तपस्या से गौरवान्वित किया है । रामा नामक संस्मरण में महादेवी जी ने बचपन की अनेक मनोरंजक घटनाओं का वर्णन किया है । इस वर्णन से उनके स्वभाव व प्रबुद्धता का पता चलता है । दशहरे के मेले में खिलौने खरीदने केलिए रामा ने एक को कन्धे पर बिठाया और दूसरे को गोद में ले लिया । महादेवी जी को उंगली पकड़ाते हुए बार बार कहा - "उंगरियां जनि छोड़ियो राजा भइया" सिर हिलाते हुए स्वीकृति देते हुए लेखिका ने उंगली छोड़कर मेला देखने का निश्चय कर लिया । भटकते-भटकते दबने से बचते-बचते इन्हें भूख लगी तब रामा का स्मरण अनिवार्य हो उठा । एक मिठाई की दूकान पर खड़े होकर अपनी

लाल बहादुर शास्त्री जी की एक अविस्मरणीय कविता

(ग्यारह महीने की बिटिया पुष्पा स्वर्ग सिधार गयी तो शास्त्री जी और ललिता दोनों बहुत दुःखी हुए। पत्नी की तीव्र वेदना को कम करने के लिए समाश्वास देते हुए, शास्त्री जी ने एक कविता लिखी जिसकी पंक्तियाँ ललिता शास्त्री जी बहुत दिनों तक याद करती रहीं ।)

कविता :

पुष्पा तू बन गयी हमारी अमर देश की सुन्दर रानी
बीती बात बनाती पगली शेष रही बस एक कहानी
बडे प्यार से पुष्पे तुझ को मैं अंकों में लेती थी
मुझ गरीबिन दुःखिया माँ को पुष्पे तू क्यों छोड चली ?
यही खेल क्या निष्ठुर नियति का अभी जो तुम ने खेला
यह कह बन्धन छोड चली कि जगती एक झमेला है ।

प्रस्तुतकर्त्ता :

जे. आर. बालकृष्णन नायर, वर्कला

उद्विग्नता को छिपाते हुए उन्होंने सहज भाव से प्रश्न किया - क्या तुम ने रामा को देखा है ? वह खो गया है। हलवाई ने वात्सल्य मुग्ध होकर पूछा - "कैसा है तुम्हारा रामा ?" उन्होंने ओंठ दबाकर संतोष के साथ कहा - बहुत अच्छा है ।

अंततः हलवाई ने आग्रह के साथ विश्राम करने केलिए वहीं बिठा लिया । "मैं हार तो नहीं मानना चाहती थी परन्तु पांव थक चुके थे और मिठाइयों से सजे थाले में भी कम निमन्त्रण न था । इसी से दूकान के एक कोने में बिछे टाठ पर सम्मान्य अतिथि की मुद्रा में बैठकर मैं बूढ़े से मिठाई रूपी अर्घ्य तो स्वीकार करते हुए उसे अपनी महान यात्रा की कथा सुनाने लगी । संध्या समय सबसे पूछते-पूछते बड़ी कठिनाई से रामा एक दूकान के सामने पहुँचा तब उन्होंने विजय-गर्व से फूलकर कहा - तुम इतने बड़े होकर भी खो जाते हो । देखिए उनका बुद्धि-चातुर्य, खो खुद गई पर कितनी सरलता से खोने का आरोप रामा पर मढ़ दिया ।

इन संस्मरणों से उनकी संस्कार सम्पन्न माँ का व्यक्तित्व व उस व्यक्तित्व का महादेवी पर प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । उन्होंने अंधे आलोपिदीन के संस्मरण में लिखा है - बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या उपव्याख्या के साथ इस व्यवहार सूत्र को समझाती रही है कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं हो सकती जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने हमारे घर आता है, वरन उस समय होती है जब कोई भूला भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर दया के कण केलिए हाथ फैलाता है ।

माँ के जीवन-काल में ऐसे अनेक अवसर आए होंगे सीखा हुआ पाठ स्मरण पर जब से वे अप्रसन्न सीमा पार पहुँच चुकी व्याख्याओं के साथ याद है । इस वक्तव्य से यह है कि महादेवी की करुणा कितने गहरे हैं ।

लेखिका की जीव विषयक एक और उक्ति है - एक युग से अधिक अवधी में मेरे पास एक एक ही धोबी और एक ह रहा है । परिवर्तन का के अतिरिक्त और कुछ - इसे न वे जानते हैं प्रकार के आत्मकथन व्यक्तित्व का परिचय सक्षम हैं ।

सेन्ट्रल यूनिवर्सि

जादू का कालीन : बालश्रमिकों की दर्दभरी दास्तान

डॉ. मिनी जॉर्ज*

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों में श्रीमती मृदुला गर्ग का शीर्ष स्थान है । 'एक और अजनबी', 'तुम लौट जाओ' जैसे दो नाटकों के अतिरिक्त मृदुला गर्ग का तीसरा मौलिक नाटक है - 'जादू का कालीन' । इस नाटक में कालीन उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों की व्यथा-कथा सुनाई गई है । इसका प्रकाशन सन् १९९३ ई. में हुआ । अमीर लोग अपने घर की सजावट के लिए जो सुन्दर व कीमती कालीनें बिछाते हैं, उसके पीछे कितने भूखे बाल श्रमिकों ने अपना पसीना और रक्त बहाया है, वह समाज के सभ्य किन्तु पाखण्डी सामन्तों व नेताओं की दृष्टि में नगण्य है । उन बाल-श्रमिकों की मौन वेदना को प्रकाश में लाकर, लेखिका ने उनपर हुए शोषण और अत्याचार का यथार्थ किन्तु तीखा चित्र खींचा है ।

कालीन के कारखानें के बाल श्रमिक छः-सात-आठ साल के हैं । यह तो स्कूल से शिक्षा पाने, माँ-बाप से वात्सल्य पाने तथा खेल-कूद में मज़ा लेने का समय है । गरीबी के कारण बचपन की सारी सुख-सुविधाओं से वे वंचित रहे । बच्चे रंगीन ऊन को तारों के बीच से घुमाकर गाँठ लगाते हैं, फिर चाकू से धागा काट देते हैं । कालीन उतना ही अधिक बढिया माना जाता है, जितनी अधिक गाँठें उसके एक इंच में हो । तारों के बीच से सिर्फ़ पतली लचकदार उँगलियाँ ही इधर-उधर जा सकती हैं । यही कारण है कि बच्चों से यह काम करवाया जाता है । इस नाटक में बालश्रमिकों की समस्या के साथ-साथ गाँव के बच्चों की दुर्दशा, सरकारी अफ़सरों की नीचता, समाज सेवी संस्थाओं की पाखण्डता-इन सभी के इर्द-गिर्द घूमता है 'जादू का कालीन ।'

बालश्रमिकों की समस्या

कालीन बनानेवाले गाँव आकर गाँव के छोटे-छोटे गरीब बच्चों को वेतन देने एवं भविष्य सुधारने की बातों से फ़ुसलाकर ले जाते हैं - "मालिक हो तो ऐसे दया की मूर्ति । कहने लगे, बहुत हुई पूजा - अर्चना । ठाकुर बहुत बहलाए, अब बच्चे पोसूँगा । अपने कालीन कारखाने में काम सिखलाऊँगा । खाना-कपडा मुफ़्त में दूँगा । ऊपर से वजीफ़ा तभी ना, काम सीखकर हमेशा के लिए बेकारी से छुटकारा मिल सकेगा ।"[१] बच्चे उनकी लुभाई में पड जाते हैं, लेकिन कारखानों में उनपर क्रूर अत्याचार ही चलता है । ये ठेकेदार गाँववालों की गरीबी का फ़ायदा उठाकर अमीर बन जाते हैं ।

कारखाने में सूपरवाइज़र और मालिक का एक ही लक्ष्य है - "इन छोटे बच्चों से अधिक से अधिक काम कराना ।" बेचारे बच्चों की भूख, प्यास, थकावट और आघात का कोई परवाह नहीं । सूपरवाइसर का कथन इसका स्पष्ट प्रमाण है -

सूपर वैइज़र : "देख क्या रही है ? हाथ चला रुको नहीं । जल्दी कर । जल्दी .... जल्दी ...

जल्दी ... (संतो की उँगली कट जाती है और वह चीख पडती है) अलग रख, अलग रख ! खून लग गया तो सत्यानाश कालीन का । धागा जलाकर दे कम्मो (जला धागा उँगली में भरता है) । ...

चुप हो जा, बैठ जा, अपनी जगह । कम्मो तू क्या कर रही है, शुरु हो जा । अरजेंट का आर्डर है। चल संतो, शुरु हो जा तू भी । .... पूरा अन्धेरा छा जाएगा, तब खा लेना खाना । तुम्हारे साथ हमें भी खपना पडता है । जल्दी .... जल्दी .... जल्दी ।

तेज़ फिरकनी की तरह घूमते हैं ।

बच्चे और तेज़ी से

कि वदन काँपने लगता है, पर हाथ

चलते रहते हैं ।"(२)

यहाँ यह स्पष्ट है कि यहाँ के कालीन विदेश में बिक जाते हैं । गाँव से सस्ते मज़दूर मिलने बन्द हो जाए तो एक्सपार्ट चौपट हो जाएगा। बच्चों से मशीन की तरह जल्दी जल्दी काम कराने से ही इन सामन्तों का जेब और भण्डार डौलर से भर जाएगा।

एक बारगी खाने के लिए तरस रहे बच्चों पर इतना अत्याचार बिलकुल क्रूर है । सरोज वशिष्ट के शब्दों में - "चौदह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की अंगुलियों की कहानी है, नाटक 'जादू का कालीन'। कहानी क्या, एक दर्दभरी दास्तान है । .... बस उन्हीं सूकाग्रस्त क्षेत्रों से सच - झूठ बोलकर प्रशिक्षण देने का बहाना करके नन्हीं-नन्हीं जानों को पचास सौ रुपयों में खरीदा-बेचा जाता है और फिर उन्हें प्रतिरोपित कर दिया जाता है, भारत के डालर प्रदेश में । जी है, जहाँ कालीन बुने जाते हैं, उन प्रदेशों को डालर प्रदेश कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी ।"(३)

'जादू का कालीन' नाटक एक और तथ्य को भी सामने लाता है कि बाल-मज़दूरों की समस्या गाँव की गरीबी की मकडजाल से उद्‌भूत है । यानी, यह एक कानूनी या प्रशासनिक समस्या भर नहीं है। गाँव में जनता इतना त्रस्त हो जाती हैं कि उनको खाने के लिए एक दाना तक प्राप्त नहीं होता । इस सूखेपन का एक कारण है, शहर के ठेकेदारों द्वारा जंगल का लूट लेना । जंगल के नष्ट होने पर बरसात कैसे संभव होगा ? दूसरा कारण है, सरकार द्वारा गाँव में नहर का निर्माण । गाँव में पानी के साधन को नष्ट करके वह नहर बनाती है, किन्तु उसका पानी पहुँचता है, शहर में । नाटक में सन्तो लाखन को अपने गाँव बुलाती है तो वह कहता है - "बकवास ! तेरे गाँव में । ना जंगल, ना पानी, ना धान, ना फल, सब ठेकेदार काट यहाँ गाँव की गरीबी का चित्र उभर आता है !

श्रीमती मृदुला नाटक में सरकारी शोषण कानूनों की अनुप्रयोगिता समाज सेवी संगठन पर चोट की है । इसमें भ्रष्टाचार का खुला हुआ है । चौदह वर्ष से बच्चों से काम करवा कानून के अनुसार जु भी हमारे यहाँ के कारख गरीब बच्चों से काम क है । व्यंग्य इस बात प्रकार के जुर्म को पक सरकार-अफ़सरों को हुआ है, लेकिन ये अ लेकर इस क्षेत्र में आँ लेते हैं। यह भी नहीं यह काम करने के लि पाता है । नाटक में सुपरवाइज़र के बात बात स्पष्ट हो जाती मालिक : तुमसे ज़रूर है । इधर आ रहना । सुना एक डेलिगेश

बाल मज़दूरों के बारे में जानकारी लेने ।

सूपरवाइज़र एक : हमें क्या ? हमारे यहाँ सब ट्रेनी है, मज़दूर एक नहीं ।

सूपरवाइज़र दो : सरकार की इज़ाज़त और मदद से नॉन फॉरमल एजुकेशन दे रहे हैं । मंत्री महोदय खुद जानते हैं । और .... (हँसकर), कमीशन पाते हैं ।"[५] हमारे गाँवों में चलते भ्रष्टाचार के समाचारों से हम अनभिज्ञ हैं जबकि रूस या अमेरिका में कोई घटना घट जाए तो उसे बढ़ा-चढाकर समाचार पत्रों में छाप दिया जाता है।

इस नाटक की टिप्पणी करते हुए डॉ. रवीन्द्र त्रिपाठी ने लिखा है - "यह नाटक बाल-मज़दूरों की हालत, उनके पुनर्वास की समस्या, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और अदूरदर्शिता के अलावा स्वयंसेवी संगठन से जुडे लोगों के पाखण्ड को भी सामने लाता है ।"[६] इस नाटक में भी एक समाज सेविका है जो गाँव आकर अपने संगठन की तारीफ़ करती है, बच्चों को बहकाकर ले जाती है लेकिन वास्तविकता कोसों दूर है । केशो गाँव का एक बेचारा लडका है । समाज सेविका केशो को पढाई करवाने के लिए शहर ले जाती है । केशो उसे परियों की रानी समझकर साथ जाता है । शहर पहुँचने पर इरादा बदल गया । वहाँ उसका जीबन बिलकुल ख़रा था । रात में स्कूल जाना है दिन में घर का काम करना है । तनख़ाह भी नहीं, अन्त में मालिकिन ने कहा कि "घर जाओ, पढाई तुम्हारे बस की ना है ।"

नाटक के अन्त में आते ही कलेक्टर के मुँह से जो शब्द निकलते हैं, वे नाटक के सभी प्रश्नों का उत्तर देते हैं - "उस सरकार की, जिसका चेहरा नहीं होता, उस समाज की, जिसकी पहचान नहीं है, उस राष्ट्रीय नीति की, जिससे लडा नहीं जा सकता, उस बेमुक्त दौड की, जिसे प्रगति के नाम से जाना जाता है, पर उसका ध्येय क्या है ? कोई नहीं जानता, अंग्रेज़ी में इसे डायनैमिक्स आफ द सिचुएशन कहते हैं ।"[७] यहाँ यह स्पष्ट है कि बाल मज़दूरों की मुक्ति के प्रयास तब तक सफल नहीं होंगे जब तक विकास की वैकल्पिक नीति न तैयार की जाय ।

संक्षेप में 'जादू का कालीन' नाटक स्पष्ट रूप से हमें समझाता है कि गाँवों और पिछडे इलाकों में भूख और गरीबी की दारुण समस्या ने बच्चों को बाल-बन्धुआ बनने के लिए विवश-सा कर दिया है । इसी विवशता से लाभ उठाकर पाखण्डी समाज सेवी संगठन, भ्रष्टाचार संपन्न प्रशासन व राजनीति भी अपना उल्लू सीधा करती है । मृदुला गर्ग ने 'जादू का कालीन' नाटक में जिन राजनीतिक पहलुओं को उठाया है, वह आज का सत्य है । अपनी अनुभव संपन्नता तथा रचना सामर्थ्य के आधार पर उन्होंने अपने नाटक साहित्य को राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति से सशक्त बनाया है । बालश्रमिकों पर होते रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करने में 'जादू का कालीन' ने बिलकुल सफलता पायी है !

संदर्भ सूची

१. मृदुला गर्ग - जादू का कालीन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. १९९३, पृ. २१
२. वही, पृ. २९
३. सरोज वशिष्ट - जादू का कालीन बच्चों की उँगलियों की दर्द भरी दास्तान, पृ. सं. १९९३, पृ. ९-१०
४. मृदुला गर्ग - जादू का कालीन, सं. १९९३, पृ. ३३
५. वही, पृ. २७
६. वही, मुख पृष्ठ
७. वही, पृ. ५२

* *हिन्दी विभाग, कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनंतिट्टा, केरल ।*

पारिस्थितिक विमर्श ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में

डॉ. ए. के.

मानव संस्कृति का उदय तब से माना जाता है जब से मानव ने उसे परिभाषित/व्याख्यायित करना शुरु किया है । (वन्यत्व से डरना, प्रकृति शक्तियों के सामने गिडगिडाना, उससे रक्षा केलिए प्रार्थना करना आदि चेष्टायें उसकी ओर से प्रकृति की व्याख्यायें रही हैं।) प्राक्तन जनता ने प्रकृति की व्याख्या उसे अपनी ज़िन्दगी से जोड़कर/मिलाकर ही की है । उस मिलाप में या तादात्म्य में स्तवकों-कीडों से युक्त अनेक जैव अवस्थितियाँ मौजूद थीं । इस प्रकार की वैविध्यपूर्ण निवास विधियों / अवस्थितियों को जुडाकर मानव ने प्रकृति को वश में किया बल्कि प्रकृति के वश में होकर यानी अधीन होकर उसका हिस्सा बनकर ही जी रहा था । इस प्रक्रिया की शृंखला की कडी रही थी नदियाँ झरने युक्त जल संसाधन/जल-स्रोत । इसके हर एक जल-कण में जीवन का स्पंदन पहचाना जाता था। इसी कारण से वनवासियों और आदिम निवासियों को प्राकृत की संज्ञा दी जाती है, प्रकृति का हिस्सा बनकर जीने के अर्थ में । यहाँ आधुनिक मानव पृथ्वीतल के वैविध्यपूर्ण जैव अवस्थिति का उल्लेख करते हुए / उसे जोखिम में डालकर उसकी व्याख्या करता है । टिड्डी और मेंढकों की हत्या करके आज वह प्रकृति से मुकाबला करता है और उसे चुनौतियाँ देता है । इन जीव जन्तुओं की हत्या उसने अपनी भूख मिटाने केलिए नहीं बल्कि अपनी सुख-सुविधां को बढाने केलिए की है । इसके ज़रिये वह अपनी ही जैव अव कुल्हाडी मारता है और उसे अदल-बदल है जबकि प्राकृत मानव ने सिर्फ़ अपनी भ केलिए जीव जन्तुओं की हत्या की थी ।

हेन्ड्री मोरगन ने मनुष्य-वर्ग के इ स्तरीय विभाजन करके उसे जंगलीपन, ब नागरिकता की संज्ञायें दे दीं । जंगली मान ज़रिये जीवन बिताता था तो बर्बर जनत करके । वर्णमाला के उपयोग ने नागरिक दिया । यों मानव आधुनिक बन गया ।

आधुनिक मानव की उपभोग तृष्णा जब हद से बाहर हो गये तब जैव अवस्थि बादल होने लगीं । उसका नतीजा यह निक तापन में बदलाव सहित विपत्तियाँ मान विनाश रुप धारण करके मंडराने लगीं शंकित और चिंतित होकर प्रकृति की ओर या वापस जाने का पक्ष पकडने लगा । प्राकृतिकत्व, जो साहित्य में इन्द्रिय गोचर सौन्दर्य चिंता के रुप-विधान में साहित्य इस संदर्भ में या इसी पृष्ठभूमि में पारिस्थि शास्त्र साहित्य में अपनेलिए जगह खोज

लेकिन शुरु में पारिस्थितिक अ जन्तु एवं पर्यावरण के बीच के सम्बन्ध सीमित रहा । जीवशास्त्र की एक शाख

पहले यह अध्ययन प्रकृति-सृष्टियों में मौजूद निरालेपन खोजने तक ही सीमित रहा । (हरे मेंढक का हरा रंग, बाघों के पीले रंग की पट्टियाँ, गिरगिट के रंग बदलने की सुविधा आदि)। लेकिन आज स्थिति बदल गयी है । आज पारिस्थितिक सौन्दर्य शास्त्र एक स्वतंत्र एवं वैज्ञानिक ज्ञान-प्रदेश बन गया है । वह जीव-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान एवं समाज-विज्ञान को अपने में समेटने लगा है। इस दिशा में एक राजनीति का उदय भी हुआ है जो पारिस्थितिक राजनीति के नाम से विकसित होता आ रहा है । यह दावा भी शुरु हो गया है कि प्राकृतिक सँसाधन मात्र उपरिवर्ग केलिए है या वह अपनी निजी संपत्ति है । एक ओर इन प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग/आस्वादन करके उपरिवर्ग मोटा होता जा रहा है और दूसरी ओर विकास या प्रगति के नाम पर अनेक प्रकार के गोत्र जन-विभागों का और उनकी संस्कृतियों का उन्मूलन होता रहा तब पारिस्थितिक राजनीति अपनी दिशा पहचानने लगी । बाँधों के निर्माण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के पीछे, प्रकृति के संतुलन की रक्षा का लक्ष्य एवं दायित्व भी शामिल है। इस प्रकार की जीवित वचने की / अतिजीवन की राजनीति ही पारिस्थितिक राजनीति सामने रखती है । मेधापडकर, वन्दना शिवा आदि आज इस आन्दोलन की शीर्षस्थ हैं । इस मोड पर सौन्दर्य शास्त्र के ज़रिये साहित्य कृतियों का पुनर्पाठन की संगति/प्रासंगिकता है।

काल्पनिकतावाद, सामाजिक यथार्थ वाद एवं आधुनिकता को पीछे छोडकर उत्तर आधुनिकता से पहले ही एक नव संवेदन के रूप में, प्रकृति के इन्द्रियगोचर वस्तुओं के प्रति उभर आये यह सौन्दर्य चिंतन पारिस्थितिक सौन्दर्य शास्त्र की संज्ञा से अभिहित होकर, प्रकृति को कला एवं साहित्य से जोडने की प्रक्रिया में सक्रिय है । उतना अधिक विकसित न होकर भी एक नवीन साहित्य सिद्धान्त एवं पद्धति के रूप में अपनी प्रचुर प्रचारता की राहों में है यह पारिस्थितिक वाद।

उन्नीस सौ अठहत्तर में छपे Literature and Ecology : An experiment in eco criticism नामक अपने आलेख के ज़रिये पहले पहल Eco-criticism पद का प्रयोग विलियम् रुक्केर्ट नामक अमरीकी लेखक ने किया । अपना आलेख में रुक्केर्ट ने यों कहा : "मेरा उद्देश्य इस विषय पर जांच / परख करना है कि साहित्यिक अध्ययन में अवस्थिति एवं पारिस्थितिक तत्व का प्रयोग कैसे होता है । विश्व जो हमारा निवास स्थान है, उसकी आज की स्थिति एवं उसके भविष्य से जुडी खास विषय है इक्कोलॉजी।"(१) लेकिन आधुनिक पारिस्थितिक समीक्षा ग्रन्थ के रूप में आलोचकों के बीच मान्यता प्राप्त ग्रन्थ है उन्नीस सौ चौहत्तर में प्रकाशित जोसफ मीक्कर की किताब - The comody of survival : studies in literary ecology. वे लिखिते हैं - "साहित्य-रचनाओं में प्रतिपादित जीव-विज्ञानपरक प्रतिज्ञप्तियों एवं संबन्धों को लेकर किये जानेवाले अध्ययन साहित्यिक इक्कोलॉजी है । इसके साथ मानव अवस्थिति में साहित्य के योगदान को भी परखना है । यह अध्ययन भी साहित्यिक इक्कोलॉजी को करना चाहिए कि प्राकृतिक प्रक्रियाओं की असलियत के बारे में मानवों का विश्वास और आधुनिक पारिस्थितिक संकट के कारण भूत सांस्कृतिक सिद्धान्त आदि पर साहित्य कृतियों के ज़रिये कैसा प्रकाश डाला गया है । मानव की मौजूदगी एवं ज़िन्दगी पर साहित्य ने किस प्रकार प्रभाव डाला है ।"(२)

उन्नीस सौ सत्तरों में शुरु होकर, विश्व भर में,

पारिस्थितिक विमर्श नामक एक नवीन आलोचना पद्धति के रूप में व्याप्त, इस सिद्धान्त उन्नीस सौ नब्बे में ही ज़ोर पकडा है । उन्नीस सौ छियानब्बे में षेरिल ग्लोफ़ेल्टि के संपादकत्व में The Eco-criticism - Reader प्रकाशित हुआ । उनकी भूमिका में इस नवीन आलोचना पद्धति की परिभाषा यों दी गयी है : " मानव संस्कृति प्रकृति से अभेद रूप से जुडी हुई है, जिस प्रकार प्रकृति संस्कृति पर प्रभाव डालती है उसी प्रकार संस्कृति भी प्रकृति पर प्रभाव डालती है । इक्को क्रिटिज़िज़म प्रकृति और संस्कृति के बीच के संबन्धों की सहचारिता या साझेदारी की छान-बीन करता है । एक सैद्धान्तिक पद्धति के रूप में एक ही समय यह मनुष्य एवं मनुष्येतर सत्ता से जुडे हुए रहती है । इक्को क्रिटिज़िज़म साहित्यिक अध्ययन केलिए एक प्रकार का भौम केन्द्रित उपागम स्वीकार करता है ।"[३]

साहित्य में जितना ज़ोर पात्र, वस्तु, तथ्य आदि को दिया जाता है उतना स्थल या स्थान को नहीं । स्वेन विरक्केटस के अनुसार इक्को क्रिटिज़िज़म का मुख्य विषय बाहरी दुनिया एवं स्थल न होकर मानव ही होना चाहिए । "इक्को क्रिटिज़िज़म का लक्ष्य एवं जाँच-पडताल यह होनी चाहिए कि मनुष्य-स्वभाव एवं उसकी लिप्सा, अत्यासक्ति, प्रभुत्व आदि के प्रति साहित्य का दृष्टिकोण क्या है ? या साहित्य इनके बारे में क्या अभिव्यक्त करना चाहता है । साहित्य और उससे जुडी ज्ञान- शाखाओं का दायित्व यह होना चाहिए कि मानव की वह अन्दरूनी प्रेरणा क्या है या क्या हो सकती है जिससे आज पृथ्वी की यह दुरवस्था हुई है ।"[४] यों Ecological and environmental aesthetic अब भी पुनर्नवीकृत एवं नये क्षितिजों को अपनी ओर खींचते और समेटते हुए विकासोन्मुख या विकासशील ज्ञान प्रदेश है । इसका मूल नारा है "प्रकृति की ओ जाना और प्रकृति को जानना ।" आज प्लास्टिक करने के विरुद्ध आवाज उठाने और de चीज़ों के इस्तेमाल की ओर मुडने की प्रि चिन्तन की उपज है । इस सौन्दर्य शास्त्र विषय रहा है कला की निर्मिति एवं आस्वा

इस दिशा की ओर पाश्चात्य चिंतक पडने से पहले ही भारतीय विचारकों की चुकी थी, भारतीय चिंतन-पद्धति में यानि त में इसके कई दृष्टांत हैं। तमिल साहित्य चिंतन का खोजबीन करने की प्रवृत्तियाँ उसका स्पष्ट प्रमाण है द्राविड सौन्दर्य शास्त्र पुरालेख 'पोरुलतिकारम्' । गरिमा आस्वादन या आलोचना केलिए कृति च मुख्य रूप से ध्यान देने वाली बातों तोलकापियम् नामक पुस्तक का पोरुल शीर्षक में मौलिक रूप से किया गय अनुसार पहली बात यानी मुतल्पोरु अवस्थाओं से जुड़ी हुई है । अतः साहि में मौसम / जलवायु से जुडे सभी घट है । तोलकापियम में उल्लिखित काल दो हैं - वर्षा, ग्रीष्म आदि ऋतुयें और प्र सायंकाल, निशा आदि दिन भाग । लें ऐतिहासिक एवं साँस्कृतिक घटकों से यु भी समीचीन होगी ताकि उसमें समग्र परिस्थिति का मतलब परिवर्तन है । समान, प्रकाश और अन्धकार के स वर्षा के समान बदलते ऐतिहासिक युग मानव जीवन की परिस्थिति है । स वातावरण से संकेतित सभी घटक

इसलिए ऋतुओं की विशेषताएँ एवं मानव ज़िन्दगी पर उनके प्रभावों का सहज प्रामुख्य है । यों विशाल और गहरे अर्थ स्तर पर समय / काल का सम्मिलन ख़ास महत्व की वस्तु है। इस काल के भीतर प्रमुख रूप से तीन घटक मौजूद होंगे । (१) लिखित काल या जिसने लिखा है उसका काल (२) कृति में अभिव्यक्त काल, युग (३) पाठकों का वर्तमान काल, जब अध्ययन करता है वह काल । यदि बरसों पहले लिखी गयी किसी कृति का अध्ययन आज करना है तो उस समय की ओर भी ध्यान देना पडेगा जब उसका प्रणयन हुआ था, साथ में, समान रूप से वर्तमान समय पर भी ध्यान देना चाहिए जब उसका अध्ययन किया जाता है। इसप्रकार मानव ज़िन्दगी को उसकी पृष्ठभूमि एवं प्रेरक शक्ति स्वरूप भौम प्रकृति एवं जलवायु से जोडकर अध्ययन करने का जो साकल्य दर्शन द्राविड काव्य-मीमांसा में बीज रूप में मौजूद है वह उल्लेखनीय भी है । इसके अलावा उसमें यह भी वर्णित है कि विरुद्ध परिस्थिति किस प्रकार भाव संघर्ष की अभिव्यक्ति में योग देती है । यहाँ इस दर्शन के साथ जोडकर पाश्चात्य आलोचक अडोणो एवं यूरिबोरेव के सौन्दर्यशास्त्र की व्यवस्थाओं को भी पढ़ना चाहिए । बोरेव के अनुसार सौन्दर्य का विलोम वैरूप्य नहीं है हीनता है ।

आज के नवीन पारिस्थितिक सौन्दर्य-शास्त्र से एक हद तक इसकी समानता है । द्राविड काव्य मीमांसा में साहित्य को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है । *अकम् पोरुळ* एवं *पुरम् पोरुळ* । *अकम्* का मतलब है आन्तरिक, व्यक्तिगत, मनोवैज्ञानिकाधिष्ठित, मृदुभावों से सुन्दर, आत्मनिष्ठ आदि । *पुरम्* से तात्पर्य है बाह्य, समष्टिगत, समाजशास्त्राधिष्ठित, वस्तुनिष्ठ, विवरणाधिष्ठित, आख्यान विशेषताओं से युक्त आदि । ये दोनों अकत्तिणा एवं पुरत्तिणा से अभिहित हैं । यह एक अनुकरणीय संकल्पना है ।

परिस्थिति एवं जैव-वैविध्य पर किये जाने वाले हस्तक्षेपों की समग्रता वास्तविक होते हुए भी जल-स्रोतों पर किये जाने वाला अतिक्रमण बहुत ही ख़तरनाक है । यहाँ मोड बारलो की चेतावनी स्मरणीय है कि यदि दुनिया में और एक विश्वमहायुद्ध की संभावना आ जाय तो वह पेय जल केलिए ही होगी ।[६] पानी का ख़ास महत्व है । पहले पहल जीवन के स्पंदन का मंच बनने के साथ साथ सभी सभ्यताओं के आविर्भाव का उद्गम स्थान भी नदी-किनारा ही रहा । यह प्रतिभास विश्व भर की बात है किसी अंचल विशेष की नहीं । इसलिए नैल, यूफ्रट्टीस, रैन, याङ्सिक्याङ्, गंगा सभी इसी शृंखला की कडियाँ हैं । इसलिए जीवन, उसका संवर्धन एवं गति अविच्छिन्न रूप से पानी के साथ शृंखलित है। लौकिक और अलौकिक का द्विमुख्त्व भी इसे स्वायत्त है या इस में समाहित है । सब कुछ अपने में समेट कर, बहाकर ले जाने वाली नदियाँ स्वयं स्वच्छ शान्त स्फटिक समान परिलसित होती हैं क्योंकि उनका कर्म और धर्म देने में ही है । नदी और मानव का सहज मिज़ाज़ आगे की ओर बढ़ना है, इसका विलोम स्वीकार्य नहीं है । पानी पर सभी जीवजालों का अधिकार अवितर्कित है । लेकिन स्वयं स्वामित्व पदावरोधित मानव ने कुविकास के ज़रिये जीवन के चिर सहज नवीकरण की ताकत पर आघात पहुँचाया । गंदी बनती गयी नदियाँ, सिकुडी गयी भूगर्भ जलधारायें रेगिस्तान बनती जाती मिट्टी, प्यासा मानव आदि इसके दुष्परिणाम हैं ।

केरलीय परिप्रेक्ष्य में उन्नीस सौ अठहत्तर अस्सी

के आसपास घटित सैलन्टवाली आन्दोलन, चालियार एवं प्लाचिमडा के जल संघर्ष, एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में गंगा, यमुना, नर्मदा आदि पर किये जाने वाले जल आंदोलन आदि को इस संदर्भ में याद करना पडेगा । साथ में तियडर रोस्साक का यह वाक्य भी "अधिक समीपस्थ प्रकृति तन ही है ।" अब जन चेतना अधिक सतर्क बन गयी है उसका नतीजा है कि जलस्वराज्य अभियान जैसी संस्थाओं का आविर्भाव ।

इस संदर्भ में ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं का अध्ययन एवं मनन अधिक समीचीन एवं अद्यतन होगा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में पुरानी और नयी संकल्पनाओं से संपन्न है हिमालय और गंगा ।

ज्ञानेन्द्रपति की कविता 'गंगास्नान' में एक बूढी मैया विषाक्त होती गंगा में पुण्य की खोज में उतरने वाला 'विज़न' है । यहाँ जीवन के सायंकाल में पहुँची बुढ़िया मैया एवं मृतप्राय गंगा में द्वैत की भावना नहीं, एकाकारिता है ।

"आयी थी जल-तल तक जो कूँथती-कहरती
निहुरी-दुहरी
वह बूढी मैया, दूर से आयी।"

नदी का जल-तल तक पहुँच गया है, माता भी मृत्यु की देहली पर खडी है । दोनों के जीवन के दैर्घ्य में भी समानता है, दोनों दूर से आयी हुई हैं। यहाँ नदी नारी बन जाती है । एक अर्थ में बूढी माँ को हम प्राकृत कह सकते हैं क्योंकि वह प्रकृति में आज भी पुण्य खोजती है और प्रकृति से जुडकर जी रही है, अब भी गंगा उसकेलिए जीवन-दायिनी है । माता बूढी है इसलिए पुरानी है । लेकिन नये आधुनिक मानव केलिए वही नदी आधुनिकता कूडे करकट छोडने या फेंकने की जगह से ज़्यादा महत्व नहीं रखती है । आगे की गंगा के विषाक्त होने के कारणों की सूचक हैं। गंदगियाँ आजकल नदियों में बहायी जाती हैं

"उन दुग्धहीन, पर दुग्धगंधी छातियों से
हुई दुहि
जो आंख खोलकर तुम्हारे देखते देख
नगर के नालों की गंदली उगल में
निगली जाती है अचीन्ह,

यह भावना / प्रवृत्ति इस तथ्य का द्यो है कि नयी सभ्यता ने मानव को प्रकृति से दिया है, मतलब अपने ही परिवेश में वह गया है ।

'नदी और साबुन' कविता भी मै होती नदी के प्रति कवि मन के गम का स्प

"बाघों के जुठराने से तो
कभी दूषित नहीं हुआ तुम्हारा जल
न कछुओं की दृढ पीठों से उलीचा
कम
हाथियों की जलक्रीडाओं को भी तु
सा

इस कविता में प्रकृति के जैव बाहर धकेल दिये गये मानव का विलाप बाँध कछुए एवं हाथी से युक्त एक बहुत को नदी अपने में संजोकर रखती है । कछुओं की क्रीडा प्रकृति के ताल-लय से उनकी क्रीडा को नदी सहर्ष स्वीकार कर की क्रीडा इन्हीं प्राकृतिक ताल-लय क डालती है । यहाँ 'क्रीडा' शब्द खास अ इशारा करता है । आधुनिक मानव को न

"तुम्हारा त्याग तुम्हारा आभूषण"

(१९१७-२००९)

सन् १९३४ को उत्तर केरल के कण्णूर जिले में आयोजित समा में महात्मागाँधी ने ही यों कहा था ।

महात्माजी के आह्वान से प्रभावित सोलह साल की किशोरी कौ ने हरिजन समिति की आर्थिक-निधि संचयन हेतु अपने सोने के आभूषण समर्पित किये । आजीवन हिन्दी तथा खादी के प्रचार में वे रहीं ।

संग्रथन परिवार की श्रद्धांजलियाँ !

- सं

यहाँ मेहनतकश ग्रामीण जनता के परिश्रम पर नागरी जनता की सुख लोलुपता अधीशत्व स्थापित करके स्वाभित्व की पदाधिकारिणी बन जाती है । परिश्रमी जनता निचले वर्ग की और नागरी जनता उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है । यहाँ प्रकृति (जो मेहनत करता है) पर स्वामी (जो उपभोग करता है) अधीशत्व स्थापित करता है । ऐसे अधिनिवेश प्रत्ययशास्त्र की चर्चा ज्ञानेन्द्रपति की कवितायें सामने रखती हैं ।

नदी में स्वच्छन्द बिहार करते पक्षियों का मंथर झुण्ड का रहगीर की आहट से भयभीत होकर तितर-बितर हो जाना, काली टाँगों वाले धौले बगुल का नदी में खडे हो जाना, इन सब के ऊपर प्रभुत्व दृष्टि वाले बाज का उडान कविता में यों जगह खोजता है।

संक्षेप में ज्ञानेन्द्रपति की कवितायें अद्यतन सामाजिक परिवेश की ज्वलन्त समस्याओं की ओर प्रकाश डालती हैं। ये कविताएँ समकालीन सांस्कृतिक संकट का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं । नये कवियों और पाठकों को पारिस्थितिक सौन्दर्य चिंतन का नया अवबोध देने में ये कविताएँ नितांत सहायक होंगी।

संदर्भ सूची

१. William Rucckert - Literature and Ec experiment in eco criticism - 1978
२. Joseph Meeker - The comedy of studies in literary ecology - 1974
३. Ed. Cherrylglotfelty and Harold Fr eco criticism Reader - 1996
४. Sven Birkerts - Only God can ma The Joys and Sorrows of Eco Critic
५. Ayyappapanicker - Indian Sidhaantam - 1999
६. Mode Barlow : Blue gold the wate the conmodification of world's w
७. Vandana Siva - Globalization's Seed water and life forms - 200
८. Ed. C. Rahim - Paristhithiyude - 2003
९. Gyanendrapathy - Gangathat - 1
१०. Massaro Emmotoo - Jalathinu P - 2008
११. Dr. T. P. Sukumaran - Paristhi Sasthrathinu oru Mukhavura -
१२. सं. नित्यानन्द मिश्रा - पर्यावरण एवं संरक्षण - २००५
१३. प्रवीण कुमार - पर्यावरण के प्र

* *रीडर, हिन्दी विभाग, श्री*

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में दहेज प्रथा

डॉ. रमणी वी. एन.*

प्राचीन काल से भारतीय समाज में वैवाहिक सम्बन्ध को पवित्र एवं अटूट माना गया है । संसार के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में दाम्पत्य-जीवन सुगठित है । लेकिन आज विवाह प्रक्रिया के पवित्र बन्धन के बीच आये दहेज की कुप्रथा से सामाजिक सुव्यवस्था छिन्न-भिन्न होती जा रही है ।

दहेज प्रथा भारतीय समाज में कब और कैसे आरंभ हुई, यह ठीक रूप से नहीं कहा जा सकता। प्राचीन काल से यह प्रथा किसी न किसी प्रकार हमारे समाज में प्रचलित थी । कालानुसार इसमें कई प्रकार के परिवर्तन हुए । नव जीवन में प्रविष्ठ वर और वधु दोनों को सुखी और सन्तुष्ट जीवन केलिए धन की आवश्यकता है । पहले स्त्री घर के बाहर जाकर काम नहीं करती थी और आर्थिक रूप से वह परतन्त्र थी । इसलिए वधू के जीवन को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने केलिए विवाह के समय पिता पुत्री को स्वेच्छया अपनी हैसियत के अनुसार कुछ उपहार देते थे । तब धन की अपेक्षा व्यक्ति को मान्यता मिलती थी । धीरे-धीरे वधूपक्ष के मन में ऐसा एक विचार उदित होने लगा कि वर-पक्ष केलिए कुछ न कुछ देना । बाद में दहेज लेना वर-पक्ष अपना अधिकार मानने लगा और अधिक से अधिक दहेज लेने की अपेक्षा करने लगा ।

आधुनिक युग के अनुरूप हमारे समस्त क्रिया-कलापों में परिवर्तन आये । लेकिन दहेज की कुप्रथा को समाज से दूर करने में हम असफल हुए । दहेज-प्रथा इक्कीसवीं शती की एक ज्वलंत समस्या है । आज भारतीय समाज में अविवाहित नारी माता-पिता केलिए एक भीषण समस्या है । दहेज के अभाव में नारी का जीवन किसी मूर्ख या बूढे के साथ बाँधना पडेगा। यदि वर शिक्षित है तो दहेज की रकम और भी बढती है । माता-पिता अपने पुत्रों को ऊँची शिक्षा देते हैं और इस शिक्षा का व्यय पुत्र-वधू के माता-पिता से दहेज के रूप में वसूल करते हैं। दहेज की कमी से असन्तुष्ट अपने ससुरालवालों के निष्ठुर व्यवहार से दुःखी होकर अनेक युवतियाँ आत्महत्या करने को बाध्य हो जाती हैं। दहेज के कारण मृत्यु आज नित्य प्रति पत्र-पत्रिकाओं का विषय बन गयी है ।

हिन्दी उपन्यासों में दहेज प्रथा

दहेज की भीषण समस्या से हिन्दी उपन्यास अच्छूता न रह सके और हिन्दी उपन्यासकार इस समस्या की बुराइयों के प्रति उदासीन नहीं रहे । उन्होंने इस कुप्रथा की शिकार बनी अनेक नारियों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । प्रेमचन्द-युग से लेकर आज तक इस विषय पर अनेक उपन्यास देखने को मिलते हैं । प्रेमचन्द ने दहेज-प्रथा का दुष्परिणाम 'सेवासदन' में वेश्या-

समस्या के रुप में दिखाया है । दहेज के अभाव में सुन्दर सुशील शिक्षित कन्या सुमन का विवाह गजाधर सदृश निर्धन अधेड उम्र के व्यक्ति से करना पडा । उस अनमेल विवाह से उत्पन्न समस्याओं के कारण सुमन वेश्या-जीवन अपनाती है । 'निर्मला' में भी प्रेमचन्द ने दहेज समस्या का चित्रण किया है । दहेज के अभाव में निर्मला तीन पुत्रोंवाले अधेड उम्र के एक विधुर वकील की पत्नी बनने को बाध्य हो जाती है और उसका समस्त जीवन अभिशाप-ग्रस्त हो जाता है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में दहेज प्रथा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाज की बहुत-सी समस्याओं का हल शासन द्वारा प्रस्तुत किया गया है । कई बार दहेज निषेध अधिनियम पास हुआ जिसमें दहेज देने या लेने या दहेज माँगने केलिए दंड की व्यवस्था की गयी है । परन्तु दहेज प्रथा अपना रुप बदलकर शासकीय नियमों को निरर्थक बनाती चली जा रही है । स्वतन्त्रता के बाद इस प्रथा का रुप और भी भीषण हो गया है । स्वातंत्र्योत्तर अधिकांश उपन्यासों में इस कुप्रथा का उल्लेख है । समस्या का सच्चा हल मानव के शीलपरिवर्तन द्वारा ही सम्भव हो सकता है । शासन केवल आंशिक रुप से जनता के शील को प्रभावित कर सकता है । यही कार्य आधुनिक काल के कई उपन्यासकारों ने किया है । दहेज प्रथा का अभिशाप स्वातंत्र्योत्तर युग में पूर्व की अपेक्षा अधिक तीव्रतर होता चला जा रहा है । स्वातंत्र्य के छह दशक बीत गये। फिर भी दहेज प्रथा के दुष्परिणामों से भारतीय समाज मुक्त नहीं हो पाया है । उपन्यासकारों ने दहेज प्रथा की बुराइयों और इससे उत्पन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला है । इन समस्याओं का समाधान खोजने में भी वे सफल हुए । 'टूटती लकीरें', 'थके पाँव', 'ये लोग यह दुनिया', 'दहेज', 'टूटते इन्द्रधनुष', 'अधूरा स्वप्न' आदि उपन्यासों में दहेज प्रथा और उससे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण है । अधिकांश उपन्यासकारों ने इस कुप्रथा को दूर करने का सुझाव भी दिया है ।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'थके पाँव' में दहेज प्रथा का उल्लेख है । केशव की बहिन सुधा के विवाह केलिए पिता बाबू रामचन्द्र तीन हज़ार रुपये देना चाहते थे क्यों कि उनके लड़के केशव को तीन हज़ार का दहेज मिला था । लेकिन बाबू बाँकेलाल पाँच हज़ार

का दहेज माँगते थे । र
कहा - "पाँच हज़ार की
ज़्यादा होती है चार हज़ा
की कोशिश करूँगा, फि
नहीं देता इतने पर तो
मान ही जाना चाहिए ।"
वर की नौकरी के अनु
देना चाहिए । यदि रिश्वत
नौकरी है तो दहेज औ
सकते हैं। यहाँ वह चूंगी व
है । केशव दहेज प्रथा
था। लेकिन पिता के
कुछ नहीं करता ।

कभी कभी ल
स्टेटस दिखाने केलिए त
दहेज देते हैं । 'टूट
उपन्यास में इसका उल्ले
बाँकेलाल की एकमात्र
उसने अपनी फ़ैक्टरी के
प्रीति का विवाह तय
सेठ बाँकेलाल के दहे
का घर भर गया था ।
में इतनी चीज़ें दी डा
शहर उनकी चर्चा व
फैक्टरी, बंगला, कार
सब दिल खोलकर
प्रीति को दहेज के रु

प्रकाश भारती
'ये लोग यह दुनिया' म
सुलोचना से प्रेम करत
सुलोचना के पिता द्व

डॉ. सी. जे. प्रसन्नकुमारी*

आकाश की विशालता, बादल का गंभीर घोषत्व और सागर की गहराई से संपन्न डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की समीक्षा-पद्धति की विशेषता समकालीन कवि डॉ. केदारनाथ सिंह के शब्दों में कहें तो - "वे आलोच्य कृति को बार-बार देखते थे, और दूर तक देते थे और ऐसा करते हुए इतिहास उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हो पाता था।" पहले जानना और फिर मानना ही भव्य-व्यक्तित्व के धनी सर्जक एवं मौलिक चिन्तक द्विवेदीजी का अध्ययन-क्रम है । वैदिककाल के ऋषि, वाल्मीकि, वेदव्यास, भरतमुनि, कालिदास, बाणभट्ट, हर्ष, गोरखनाथ, चंदबरदाई, कबीर, सूर, तुलसी, टैगोर, मदनमोहन मालवीय, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचंद जैसे चिन्तकों, तत्वज्ञों, दार्शनिकों एवं साहित्यकारों से प्रभावित उनकी समीक्षा दृष्टि, अत्यन्त व्यापक स्तर की है । सर्जना को सब से बड़ा सत्य माननेवाले द्विवेदीजी के सृजनात्मक विचारों की जड़ दार्शनिक गहराई में है ।

आचार्य द्विवेदी की चिन्तन भूमि की मानस-यात्रा का पहला पड़ाव है सन् १९३३ में प्रकाशित लेख 'वैष्णव कवियों की रूपोपासना'। उनकी पहली पुस्तकाकार समीक्षा सन् १९३६ में आलोकित 'सूर साहित्य' है।

सन् १९४३ में प्रकाशित हिन्दी साहित्य की भूमिका, कबीर (१९४२), हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास (१९५३), हिन्दी साहित्य का आदिकाल (१९५२), लीला सहचर (१९६५), लालित्य तत्व, काव्यशास्त्र (१९८१) आदि उनके प्रसिद्ध समीक्षा-ग्रंथ हैं । संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो (१९६३), सन्देश रासक, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण आदि भी द्विवेदीजी की आलोचना दृष्टि की जानकारी देनेवाली कृतियाँ हैं । गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व पर द्विवेदीजी के विचार व *आधुनिक हिन्दी साहित्य* और *समीक्षक द्विवेदी* आदि उनके आलोचनात्मक व्यक्तित्व के परिचायक हैं ।

आलोचक द्विवेदी की राय में मानव समाज की आन्तरिक एकता का उद्घाटन साहित्य द्वारा संभव है । समाज से संपृक्त होने पर साहित्य की शक्ति बढ़ जाती है । द्विवेदीजी की दृष्टि में साहित्य की मूल प्रकृति भी सामाजिक है । उनकी सर्जनात्मक आलोचना दृष्टि जीवन और साहित्य के विभिन्न स्तरों को स्वीकारती है, पर उनकी सामाजिकता किसी सांप्रदायिक विचार से प्रेरित नहीं । जन-चेतना को अपनी समग्रता में देखने की उनकी जो प्रगतिशील दृष्टि है, उसकी प्रेरणा शायद उनका अपना जनपद बलिया है । शुक्लजी की लोकचेतना मानसकार तुलसी पर संकेन्द्रित है तो द्विवेदीजी की जनचेतना 'कबीर' से जुडी रहती

दमाद को आगे पढ़ाई केलिए अमेरिका भेजना है । हमें अधिक कुछ नहीं चाहिए । सिर्फ़ दस हज़ार रुपये पढाई का खर्च, गृहस्थी सजाने केलिए फ्रिज, स्कूटर और लड़की को २५-३० तोले के सोने के जेवर, जो आप देना चाहें मंजूर होगा । लड़की आप की है विवाह आप धूम-धाम से करेगा ही ।" घर लौटते समय व्रज किशोर ने अपनी माँ से पूछा "माँ तुम मेरी शादी तय करने आई थी या बाज़ार में बेचने" वास्तव में व्रज किशोर, दहेज प्रथा के विरुद्ध है लेकिन आज्ञाकारी पुत्र के रूप में चुप रहना पड़ा । उसमें उस प्रथा के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस नहीं। वास्तव में दहेज की कमी के कारण बेचारी वधु के विरुद्ध पारिवारिक तौर पर षड्यन्त्र रचे जाने के पीछे मुख्य हाथ सास और ननद का है ससुर और पति का नहीं । अन्त में शिक्षित स्वावलम्बी युवक विनय दहेज के बिना मीना को अपनाता है ।

'अधूरा स्वप्न' उपन्यास का मुख्य विषय तो दहेज है । इसमें दहेज के कारण रुप गुण सम्पन्न कन्या तृप्ता का विवाह प्रेमी मोहन से नहीं हो सका । उसका स्वप्न अधूरा ही रह गया । प्रस्तुत उपन्यास का नायक मोहन, दहेज के लेन देन के विरुद्ध है । रुढिवादी पिता के सामने मोहन विवाह केलिए स्वतन्त्र नहीं । पिता पक्के अवसरवादी थे। उन्होंने धनलोभ में पडकर लाला बनारसीदास की बेटी सन्तोष को पतोहू बनाना स्वीकार कर लिया था । सन्तोष का भाई जगदीश, मोहन का मित्र है । मोहन ने सन्तोष के पिता को पत्र लिखा जो इस प्रकार था । "मुझको आज माँ से ज्ञात हुआ कि पिताजी ने भारी प्रलोभन में फँसकर आपकी लड़की लेने की स्वीकृति दे दी है और आपने लड़की के साथ धन देने की। मैं पिता को समझाने मे असफल रहा हूँ । अब आप को यह पत्र आपका भ्रम दूर करने केलिए लिखा हूँ । सन्तोष को मैं बहन तुल्य मानता हूँ ।" मोहन का पत्र पढकर जगदीश ने पिता से पूछा "आप ने केदारनाथ को कितने रुपये का प्रलोभन दिया था ।" उस पर पिताजी का उत्तर यह था - "ये लेन देन की बातें तो होती ही रहती है लड़का अच्छा है । इसलिए मैं उसको किसी मूल्य पर भी प्राप्त करने में हानि नहीं समझता हूँ ।" बनारसीदास ने पुनः सन्तोष केलिए वर खोजना आरंभ कर दिया।

एक लड़के के बारे में बनारसीदास ने अपनी पत्नी से कहा - "लड़का स्वयं पक्का बनिया है जब मैं ने कहा वह आकर लड़की को देख जाये तो बोला - शादी के बाद मैं दिल्ली में रहूँगा - अपने माता-पिता से पृथक । पहले लड़की के नाम दिल्ली में एक सुन्दर मकान की व्यवस्था कर दें । पीछे लड़की देखने आऊँगा । शादी के वक्त मकान की रजिस्ट्री मेरे नाम कर देना ।" ये सब सुनकर सन्तोष आत्महत्या केलिए यमुना की ओर भागी लेकिन शिक्षित समझदार युवक विनोद उसकी रक्षा करता है और उसे अपने जीवन-संगिनी बना लेता है ।

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों को पढकर हमें ज्ञात होता है कि दहेज प्रथा ने इस युग में पूर्व युग से अधिक भीषण रुप धारण कर लिया है । स्वातन्त्र्योत्तर युग के अधिकांश सामाजिक उपन्यासों में इस प्रथा के दोष किसी न किसी रूप में नारी-जीवन के सुख व शान्ति का हरण करते दिखाई देते हैं। उपन्यासकारों ने शिक्षित नव युवकों के आदर्श-जीवन के द्वारा इस कुप्रथा का हल करने का सुझाव दिया है।

*हिन्दी वि
एस.एन.कॉलेज, चे

'लालित्य' संज्ञा से विभूषित करना पसंद करते हैं, उनकी लालित्य-सम्बन्धी अवधारणाएँ समष्टि मंगल पर आश्रित हैं । उनका लालित्य चिन्तन भारत की समृद्ध और अखण्ड सांस्कृतिक चेतना पर आधारित है । साहित्य में सर्जनात्मकता को परम सत्य घोषित करनेवाले द्विवेदीजी की राय में लालित्य भी एक सर्जना है । उनकी अंतिम और अधूरी कृति 'लालित्य मीमांसा' की व्याख्या करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा - "जीवन का समग्र विकार ही सौंदर्य है । यह सौंदर्य वस्तुतः सृजन व्यापार है । यह सृजन क्षमता मनुष्य में अन्तर्निहित है। वह इस सौंदर्य सृजन की क्षमता के कारण ही मनुष्य है ।" साहित्य का सूक्ष्म और संश्लिष्ट मानववाद सौंदर्य के माध्यम से प्रकट होता है। साहित्य के लक्ष्य के रूप में प्रतिबिंबित यह सौंदर्य जडीभूत चेतना को द्रवित एवं जागरित करता है और जीवन की व्यापकता में प्रसारित करता है।

द्विवेदी द्वारा रचित एवं व्याख्यायित - 'मेघदूत एक पुरानी कहानी' *कालिदास की लालित्य योजना, सन्देश रासक* जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों में यह रागात्मकता ध्वनित होती है । साथ ही अनुराग और वैराग्य का द्वन्द्व द्विवेदीजी के लिए सृजन का प्रेरणास्थल है । इस रागात्मकता को वे मानव-सहानुभूति की संज्ञा भी देते हैं ।

आलोचक द्विवेदी की परिचर्चा के संदर्भ में हम एक महत्वपूर्ण बिन्दू पर पहुँच जाते हैं, वह है उनकी सन्तुलनवादी दृष्टि । भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का आधार ही समन्वय है । यह समन्वयात्मक दृष्टिकोण द्विवेदीजी के जीवन-दर्शन की विशेषता है । आलोचना-क्षेत्र के निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक एवं प्रभाववादी दृष्टि तो एक दूसरे से भिन्न और कुछ अंशों में परस्पर विरोधिनी लगती है। पर द्विवेदीजी ने इन तीनों दृष्टियों में निहित मूल-मर्मों को एक साथ अनुस्यूत किया है और तीनों को एक दूसरे का पूरक माना है । समीक्षा विषयक सैद्धान्तिक पुस्तक *साहित्य सहचर* तथा अपने निबन्ध 'समीक्षा में संतुलन का प्रश्न' में उन्होंने समीक्षा के संतुलनात्मक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में बडी विशदता से बताया है। समीक्षा के विभिन्न वादों को सर्वमान्य मानदण्ड की तलाश का प्रयास मानते हुए द्विवेदीज़ी ने अपने निबन्ध 'समीक्षा में संतुलन का प्रश्न' में लिखा - "इस समय साहित्य के क्षेत्र में दिखाइ देनवाल वाद नामधारा अनक दृष्टिकोण इसी सर्वमान्य सत्य को ढूँढ निकालने के प्रयत्न हैं । मेरी दृष्टि में इनमें से कई सत्य के एक-एक पहलू पर अत्यधिक ज़ोर देने के कारण अलग दीखते हैं ।

भारतीय साहित्य मनीषा की श्रेष्ठतम उपलब्धि रसवाद तो भारतीय जनमानस की सामंजस्यवादी दृष्टि का परिणाम है । 'अशोक के फूल' में उन्होंने भारतीय रससाधना के प्रति अपनी उत्कंठा एवं ज्ञान-पिपासा प्रकट की है - "मेरा मन उमड-घुमडकर भारतीय रससाधना के पिछले हज़ार वर्षों पर बरस जाना चाहता है ।"

परंपरा और प्रकृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है । अतीत के गर्भ में अदृश्य रहनेवाला वर्तमान तो अनगिनत घात-प्रतिघातों का परिणाम है । अतीत में सुरक्षित भाव-संपदा एवं विचार-संपदा वर्तमान को समझने में सहायक है। इनमें सामंजस्य स्थापित करनेवाली द्विवेदीजी की संतुलनवादी दृष्टि वर्तमान और परंपरा की समझ से पूर्ण होती है ।

संतुलनात्मक दृष्टि के साथ मूक और रूढ़िभंजक विचारोंवाला द्विवेदी तकनीकी प्रतिबन्धों को तोड़कर फ़क्कड़पन को कवि बनने

है। लोकजीवन के बहुरंगी, विभिन्न विचारधाराओं के समुन्दर से शुक्लजी ने मर्यादित आदर्श सामाजिक जीवन को स्वीकार किया, पर द्विवेदीजी इस विशाल लोक समुद्र के असमाप्त यात्री रहे । लोक से हटकर आगे बढ़नेवाले द्विवेदीजी ने लोकचेतना को काव्य और आलोचना का उद्‌भव घोषित करके एक नए शक्तिशाली समीक्षक के रूप में हिन्दी जगत पर अपना कब्जा बना लिया ।

द्विवेदीजी का सब से बड़ा जीवन-दर्शन अगाध एवं अविचल मानव निष्ठा है । उनका मत था कि साहित्य जब पशु समान मनोवृत्तियों से ऊपर उठता है तभी उस सृजन को साहित्य का दर्जा प्राप्त होगा । 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में द्विवेदीजी नाखून को मनुष्य की पशुता की निशानी मानते हैं । समाज शास्त्रीय विश्लेषण पर आधारित उनका मानववाद मिथ्या आदर्शवादी कल्पनाओं से एकदम दूर है, उनका मानववाद युग-युगों की परंपराओं से बहकर नूतनता के साथ नए प्रश्नों एवं मूल्यों से जुड़ता दिखाई देता है। द्विवेदीजी ने लिखा - "मानव सहानुभूति से परिपूर्ण हृदय और अनासक्तिजन्य मस्ती, साहित्यकार को बड़ी रचना करने की शक्ति देती है ।" यद्यपि मार्क्सवादी जीवन-दर्शन को द्विवेदीजी ने मानवता के लिए श्रेयस्कर माना, उनकी मानवता किसी वाद विशेष की सीमाओं के परे हैं । सापेक्ष गतिशीलता से समन्वित द्विवेदीजी का मानववाद व्यापक और सार्वभौम है । वह साहित्य का स्रोत, लक्ष्य, यथार्थ और गंतव्य भी है ।

हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, कबीर जैसे ग्रंथों में द्विवेदीजी के साहित्य चिन्तन का जो विराट दर्शन है, वह नवमानववाद से प्रेरित है । संस्कृत साहित्य के प्रकांड पंडित द्विवेदी पश्चिमी विचारधारा के समन्वय से एक नयी उदार मूक-मानव-चेतना का प्रवर्तन करते दिखाई देते हैं । उनकी विश्वमानवता आधुनिक है, परंपरायुक्त है, वैज्ञानिक भी ।

समीक्षक द्विवेदीजी की इतिहासचर्या और अतीत प्रेम चर्चित और विख्यात हैं । *'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', मध्यकालीन साहित्य* जैसी कृतियाँ उनकी इतिहासचर्या एवं रचनात्मक संयोग का परिणाम है । धार्मिक या सांप्रदायिक उपदेश की संज्ञा देकर पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा बहिष्कृत वीरगाथाकालीन साहित्य को उन्होंने झाड पोंछकर शालीन और परिष्कृत कर दिया। साथ ही तार्किक आधार पर उस साहित्य को खोया हुआ सम्मान वापस दिलाया । सितंबर १९६७ की आलोचना में मनोहर श्याम जोशी से साक्षात्कार में द्विवेदीजी ने कहा "इतिहास मनुष्य की तीसरी आँख है । इतिहास बोध को पलायन समझना आधुनिकता नहीं, आधुनिकता - विरोध है ।" मध्यकालीन सिद्ध-नाथ-संत साहित्य के मंथन से द्विवेदीजी को सहजता की सिद्धि मिली । इस सहज साधना को जीवनपर्यन्त निभानेवाले द्विवेदीजी के व्यक्तित्व में इसी सहजता के कारण कबीर और गोरखनाथ की अमलवाणी और उनकी संभावनाएँ समा गयीं । यह सहजता उनकी मौलिकता का प्रमाण बन गयी।

सौंदर्य और रागात्मकत द्विवेदीजी की आलोचना दृष्टि क श्रेष्ठतम उपलब्धि है । साहित्य क परखते समय द्विवेदीजी उसके सौंद असौंदर्य तथा उन्हें प्रभावित करनेव तत्वों का अध्ययन करते हैं मूल्यांकन के संदर्भ में उनका मान स्वयं उन्हीं के शब्दों में - "का केवल कौशल नहीं, वह मनुष्य पशु-सामान्य धरातल से ऊपर उठ मनुष्य के उच्चासन पर बैठाने साधन है ।" द्विवेदीजी सौंदर्य

लीलाधर जगूडी की कविताओं में सामाजिक यथार्थ एवं विद्रोहात्मकता

डॉ. गायत्री. एन.*

समकालीन हिन्दी कवियों में पद्मश्री लीलाधर जगूडी का अपना अलग व्यक्तित्व और पहचान है। अपनी लंबी काव्य यात्रा में उन्हें अकविता और अनेक काव्यान्दोलनों की विभिन्न स्थितियों से गुज़रना पडा । इसलिए जगूडी नई कविता और अकविता के दौर से उभरे हमलावार युवा-कविता के बहुचर्चित कवि रहे। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ सामाजिक सरोकारों के एहसास के अलावा यथार्थ की समझ भी समस्त अन्तर्विरोधों के साथ प्रस्तुत करनेवाली हैं । उनमें व्यवस्था-जन्य विसंगति- बोध, आज़ादी, लोकतंत्र, भ्रष्टाचार, चुनाव आदि के साथ-साथ क्षेत्रीयता, जातिवाद, पूँजीवादी-सामंतवादी रुझान, हिंसा आदि पर भी अपना विचार तीखे व्यंग्य रूप में प्रस्तुत किया हैं ।

लीलाधर जगूडीजी के प्रमुख काव्य संग्रह, वे हैं - 'शंखमुखी शिखरों पर' (१९६४), 'नाटक जारी है' (१९७०), 'इस यात्रा में' (१९७३), 'रात अब भी मौजूद है' (१९७५), 'बची हुई पृथ्वी' (१९७७), 'घबराये हुए शब्द' (१९८१), 'भय भी शक्ति देता है' (१९९१), 'अनुभव के आकाश में चाँद' (१९९४) और 'महाकाव्य के बिना' (१९९५) ।

जगूडी व्यापक आक्रोश और तनाव के कवि हैं । आक्रोश, तनाव, विद्रोह आदि तो समकालीन कविता की प्रमुख रुढ़ियाँ रहे हैं । जगूडीजी समय और स्थिति, राजनीति और मनुष्य के नये समीकरणों व तनावों को समझने और समस्त विसंगतियों के समानान्तर आत्मान्वेषण करने का प्रयास करते हैं । वे सारी परिस्थितियों के संयोजन में अपनी और युग जीवन की विसंगतियों को एक साथ प्रस्तुत कर यथार्थ की नग्नता के साथ तीव्र एवं तीखी उत्तेजना को व्यंजित करते हैं । उनमें धूमिल की तरह वस्तु-स्थितियों को सामान्य भाषिक रूप में न लेकर असंगत, विशृंखल और उत्तेजक बिंबों के रुप में प्रस्तुत करने का आग्रह रहा है ।

१९६४ में प्रकाशित जगूडीजी के पहला काव्य संग्रह 'शंखमुखी शिखरों पर' में प्रकृति-वर्णन के साथ प्रेम का वर्णन हमें मिलता है। *नाटक जारी है* उनका दूसरा काव्य संग्रह है । १९७२ में प्रकाशित यह संग्रह सातवें दशक की बहुचर्चित कविता-संग्रह है । इसमें आपके १५ अपेक्षाकृत लंबी कविताएँ संकलित हैं । इस संग्रह की 'टेलिफ़ोन पर' कविता में वार्तालाप शैली में कवि ने देश की सामाजिक - राजनैतिक दुर्गति पर अपने मन की आशंका प्रकट की है -

दुनिया की क्या ख़बर है ?
अरे यहाँ ? यहाँ तो हर घर में साँप का डर है
न कोई इधर है न कोई उधर है। बस यही एक कसर है
कुर्बानी का न सिर है । न धड है ।[१]

जनतंत्र के बारे में वे लिखते हैं -

यही तो बल हो गया है जनतंत्र में / गाली देना
सरल हो गया है / तुम्हें क्या खुजली हो रही है ।"[२]

'नाटक जारी है' इस संग्रह की सबसे महत्पूर्ण लंबी कविता है । कवि बताता है कि जीवन रूपी नाटक हमेशा जारी रहता है । उस नाटक में प्रत्येक पात्र बदल-बदलकर आता है और अपनी भूमिका अदा करके लौट जाता है । अपनी अपनी भूमिकाओं से जो भाग जाता है, अर्थात् अपना कर्तव्य भूल जाता है, वह दर्घटनाओं में फँस जाता है । जीवन रूपी नाटक का पर्दा उठने पर हम इस तथ्य से अवगत नहीं होंगे कि किस मोड पर मृत्यु हमारा इन्तज़ार कर रही है । मृत्यु और जन्म इस नाटक में एक के बाद एक आता ही रहता है। यही नियति का चिरन्तन सत्य है ।

१९७३ में प्रकाशित जगूडीजी के तीसरे काव्य संग्रह 'इस यात्रा में' में आज के सर्वव्यापी यथार्थ का

१. नाटक जारी है, टेलिफ़ोन पर - लीलाधर जगूडी, पृ. ६९
२. वही ,, पृ. ७१

की आवश्यक योग्यता माननेवाले द्विवेदी चिन्तनगत उन्मुक्ता से आगे बढ़ते हैं । समीक्षा में वे काफ़ी संयत और सावधान हैं । अपनी उन्मुखता के कारण वे समीक्षा के स्थापित और स्वीकृत ढांचे से बहुत दूर चले गये । पर पुराना ढांचा उनकी समीक्षा के सामने प्रभाहीन बन जाता दिखाई देता है ।

द्विवेदीजी ने हिन्दी में एक नयी आलोचन-संस्कृति को जन्म दिया । व्यापक स्तर की उनकी आलोचना-दृष्टि साहित्य के संश्लिष्ट स्वरूप के सभी तत्वों से परिचित हैं। उनका अध्ययन और चिन्तन अधिकाधिक गंभीर विस्तृत एवं बहुपक्षीय हैं । वे तो आलोच्य कृति का परीक्षण-निरीक्षण करके आस्वादन करते हैं । आधुनिक मनोविज्ञान के इस वस्तुपरक आलोचक में विद्धता और विदग्धता, अपनी सहजता के साथ घुलमिलकर एकाकार हो गयी है । अपने गंभीर अनुशीलन और अध्ययन के दौरान द्विवेदीजी ने राष्ट्रीय एकता रुपी साहित्य के महान तत्व को आत्मसात किया । मनुष्यता को अंतिम सत्य घोषित करनेवाले समीक्षक द्विवेदी ने इस जीवन-सत्य केलिए राष्ट्रीयता एवं विश्वमानवता को पूरक माना । उनके मानववाद में उपनिषद् का चिन्तन है, संतों की उन्मुकता है । पर आलोचना के समय वे कभी अभिभूत नहीं होते थे । उनका आलोचनात्मक अध्ययन और चिन्तन-भूमि बहुत व्यापक, गहन और सार्वदेशिक है ।

द्विवेदीजी की समीक्षात्मक रागात्मकता और मस्ती तो कबीर की देन है । शुक्लजी की समीक्षा-पद्धति की बौद्धिकता का स्थान यहाँ रागात्मकता ने ले लिया । अपने पूर्ववर्ती प्रख्यात समीक्षकों की अपेक्षा उनकी समीक्षा-दृष्टि वैज्ञानिक या व्यवस्था बद्ध नहीं, बल्कि व्यापक और प्रशस्ततर है । ऐतिहासिक विवेचन की गरिमा और उदात्तत से संपन्न उनकी समीक्षा ठे आलोचक से काफ़ी बड़े हैं द्विवेदीजी की लेखनी में शास्त्र साहि बन जाता है और समीक्षा सर्जन बन जाती है । मनुष्य की महत्ता विवेचन की सहजता, इतिहासबोध लोकचेतना की पहचान, संतुलि दृष्टिकोण, मानवीय सहानुभूति क सान्द्रता, रागात्मकता, अनासक्ति समष्टिमूलक-लालित्य आदि द्विवेदीजी की उदात्त एवं भव्य समीक्ष दृष्टि के प्रतिमान लगते हैं । रा दरश मिश्र के शब्दों में कहें त "आलोचक द्विवेदी, प्राचीन के पंडि हैं, नवीन के व्याख्याता हैं, बुद्धि के धनी हैं, सहृदयता के पुंज हैं सामाजिक शक्ति के आकांक्षी हैं सौंदर्य के उपासक हैं ।" ('आजकल अक्तूबर २००७)

*अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम

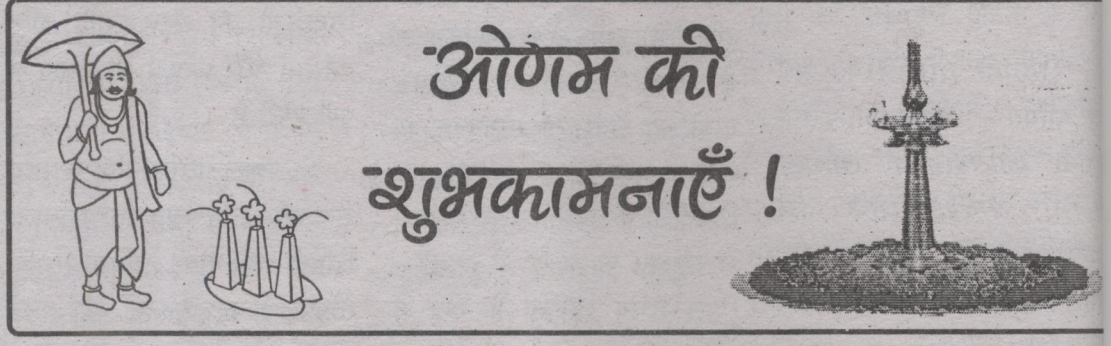

भरोसे टूटने के उस माहौल में सब तरह के यथार्थ एक साथ मौजूद हैं। यथार्थ की अनेकता में अत्याचार और भ्रष्टाचार के बीच ज़ो सांप्रदायिक एकता देखने को मिलती है, उससे संवेदना, सहानुभूति और सहिष्णुता को सर्वाधिक नुकसान पहुँचा है ।

अपने पाँचवाँ काव्य-संग्रह 'बची हुई पृथ्वी' में जगूडीजी ने ज़िन्दगी जीने केलिए लडनेवाले आम आदमी की विवशता का चित्रण किया है ।

'तथाकथित महान लोग' नामक कविता में कपटी लोगों की भर्त्सना कवि यों करते हैं -

महान लोग रात को लबादे की तरह नहीं ओढ़ते/ जैसे कि कैदी ओढ़ते हैं / रात उनकेलिए / दिन भर के कुकर्मों पर पडा हुआ पर्दा है ।[१]

यही नहीं -

कुछ महान लोग / दिन-भर रात का इन्तज़ार करते हैं / ताकि वे अपने ढ़ोंग से / छुटकारा पा सकें।[२]

जगूडीजी की कविताओं में परिवेश मुख्य पात्र बन जाता है । प्रत्येक स्थल पर यह महसूस होता रहता है कि हिंसा और युद्ध के बीच मानवीय श्रम के कई दूसरे रूप भी हैं जो उतनी ही तत्परता से भाषा का निर्माण करते हैं जितनी तत्परता से विचार व सौन्दर्य का । उनके छठे काव्य संग्रह 'घबराए हुए शब्द' की कविताएँ सामाजिक जीवन के एक-न-एक गहरे प्रसंग से जुडी हुई हैं । आधुनिक मानव समाज में रहते हुए भी एक प्रकार का अकेलापन महसूस करता है । क्योंकि वह केवल अपने परिवारवालों के बारे में ही सोचता है । 'अकेला' कविता में वे लिखते हैं -

तारीखें भी तीस / और आदमी अकेला / हफ्ते भी चार / और आदमी अकेला / महीने भी बारह / और आदमी अकेला / ऋतुएँ भी छह / और आदमी अकेला ।[३]

निम्नवर्गीय लोगों को लक्ष्य करके लिखनेवाले कवि हैं श्री. लीलाधर जगूडी । वे लिखते हैं -

मेरी कविता / हर उस आँख की दरख्वास्त है / जिसमें आँसू है ।[४]

समकालीन समाज की विडंबना यह है कि एक ही समाज में रहते हुए भी लोग एक दूसरे से विरोधी हैं। 'विरोधी' कविता में कवि बताता है -

एक ही जगह के रहनेवाले हैं / छूना और चिकोटना/ इसी तरह एक ही चीज़ लेकर / हुनर दो हो सकते हैं / जैसे चेहरे पर चुम्बन और घूँसे ।[५]

कवि बताता है कि सामाजिक विडबनाओं को सहते हुए आदमी इसलिए चुप रहते हैं कि वह बाल-बच्चेदार है । आज समाज में सच बोलनेवालों की दुर्गति होती है । समाज में रहते हुए हमें रोज़ ऐसे अनेक घबराए हुए शब्द सुनने पडते हैं कि 'हमें बचाइए' । कवि बताता है -

"एक दिन घबराए हुए शब्द आये और कहने लगे/ हमें बचाइए / जगह-जगह से हम काट दिए गए हैं / पंक्ति से हटा दिये गये हैं / या तो हमारे विकल्प खोज लिये गये हैं / या हमारे बिना भी काम चलाया जाने लगा है ।"[६]

आज का ज़माना ऐसा है कि आदमी, आदमी से ही डरते है । 'क्या किसी को फ़ुर्सत है' कविता में कवि लिखता है -

"जबकि आदमी डरता है यहाँ तक कि आदमी से/ मगर फूल, फूल से नहीं डरते / फिर भी डरते हैं, मिटनेवाली सभ्यता के छोर पर / अपने चारों ओर उगनेवाली तेज़ और क्रुद्ध और बिगडैल हवा से ।"[७]

जगूडीजी के सातवाँ काव्य-संग्रह 'भय भी शक्ति देता है में मनुष्य-स्वभाव, धर्म, राजनीति, सामाजिक उथल-पुथल, नारी, न्याय, विज्ञापन सब कुछ के बारे में परामर्श मिलते हैं । मनुष्य-स्वभाव के बारे में वे लिखते हैं -

---

१. बची हुई पृथ्वी - तथाकथित महान लोग - लीलाधर जगूडी, पृ. २२
२. वही ,, ,, पृ. २३
३. घबराए हुए शब्द - अकेला - लीलाधर जगूडी, पृ. २९
४. घबराए हुए शब्द - लडाई - लीलाधर जगूडी, पृ. ३६
५. घबराए हुए शब्द - विरोधी - लीलाधर जगूडी, पृ. ४०
६. घबराए हुए शब्द-एक दिन - लीलाधर जगूडी, पृ. ७१
७. घबराए हुए शब्द, क्या किसी को फ़ुर्सत है ? - लीलाधर जगूडी, पृ. ७७

सीधा प्रतिबिंब है । सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध आक्रोश तो जगूडीजी के प्रत्येक काव्य-संग्रहों में है । मानवंजीवन की जटिलताओं के बारे में वे अपना मत यों प्रकट करते हैं -

कभी खत्म न होनेवाली जडें । इसमें फैली हुई हैं / इसी रण से उठती है - ज़िन्दगी की ललकार / कितनी कठोर है - यह ज़मीन / कितनी बलवान है - हमारी भूख / मिट्टी होकर । एक-एक रन्ध्र और एक-एक रेशे से / गुज़रते हुए । उल्लेखनीय फुनगी तक / खिले हुए हैं - हम / हर जगह साँपों की तरह । गूँथी पडी है - हमारी इच्छाएँ / हमारे चलने से । अभी भी हिल रहे हैं । संबन्धों के पुल ।[१]

यथार्थ के विभिन्न स्तरों का उन्होंने बहुत खूबी से चित्रण किया है । चाहें संबन्धों के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्तर में या व्यवस्था से उत्पन्न विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ हो, जगूडीजी कविता उनके प्रति हम में नयी संवेद्यता और समझ पैदा करती है । नये ज़माने की हड़बड़ में जो मूल्य और संवेद्य छूटते जा रहे हैं, उसका दर्द कवि को है । 'आत्म-विलाप' कविता में वे लिखते हैं -

हम ने यहाँ सब कुछ खो दिया है / अंग्रेज़ों का विरोध और अनुजों की निशानेबाजी / पूर्वजों के सारे धार्मिक द्वन्द्व / नयी फ़सल बोते हुए पुराने अन्न के बुखने / और उनके स्वाद / हम ने सब कुछ खो दिया है ।[२]

यथार्थ को नयी फ़ेण्टेसी देनेवाले कवि हैं श्री. लीलाधर जगूडी । ये फेण्टेसियाँ कहीं-कहीं तो उक्तियों के मंत्र जैसे असरदार बन पडे हैं -

नदियाँ कहीं भी नागरिक नहीं होतीं / और पानी से ज़्यादा कठोर और काटनेवाला / कोई दूसरा औजार नहीं होता ।[३]

संस्कृत साहित्य में ऐसी शौलियाँ खोजी जा सकती हैं, जो हिन्दी में एकदम विरले ही हैं ।

'आपातकाल' के आतंक और उसकी स्मृति से उपजी अपनी कविताओं को जगूडीजी ने अपने चौथे काव्य संग्रह 'रात अब भी मौजूद है' - में संकलित किया है । एक छोटे से काल खण्ड की भयावहता इन कविताओं में है । इन का मूल स्वर बीसवीं सदी का वह आम आदमी का था जो व्यक्तिगत तौर पर खुद को उपेक्षित समझता था और सामाज़िक स्तर पर कुंठित । वह अपने को भूखा, नंगा और बीमार इसलिए समझता था कि वह सामन्ती और पूँजीवादी शक्तियों और संस्कारों को अपनी क्रान्तिकारी चेतना से उखाड फेंकने केलिए प्रतिबद्ध नहीं है ।

इस संग्रह के 'मुझे भय है' कविता में जगूडीजी बता रहे हैं कि आज के आम आदमी के मन में परिस्थिति जन्य भय हमेशा मौजूद है । वे लिखते हैं -

पृथ्वी घूम रही है / और पृथ्वी पर बाज घूम रहे हैं / जिस क्षण सोचता हूँ मैं अपना भय / जैसे कि जो बात मैं कह नहीं पाया ।[४]

ऐसे माहौल में मनुष्य केलिए सबसे बडा युद्ध अस्तित्व रक्षा का है ।

'रामलीला' कविता में मंगतू बीडी के विज्ञापन केलिए राम बना हुआ है और रामायण से ज़्यादा जीवन में लड़े जा रहे युद्ध के अँधेरे मैदान में शत्रु और शत्रुघ्न की पहचान उसकेलिए दुष्कर है -

मंगतू बीडी के पैसों केलिए / राम बना हुआ है/ प्रभातू / चाय के पैसों केलिए सीता।[५]

भारतीय समाज में निरंतर मानवीय मूल्यों की पराजय देखने को मिली है । उससे डर लगना स्वाभाविक है । अच्छाई और भलमनसाहत कितना कम होते जा रहे हैं और बुराई कितनी जल्दी व्यक्ति और समाज को अपनी गिरफ़्त में ले लेती है, इसे ढूँढ़ने केलिए इस समाज और देश से बाहर नहीं जाना पडेगा । इस संग्रह की 'भरोसे की कविता' में जगूडीजी लिखते हैं -

बार-बार उभरता है / एक डर / परिवार को छोडेंगे / घर के भरोसे / लेकिन किसके भरोसे छोडें घर ?[६]

१. इस यात्रा में - १९७३ - लीलाधर जगूडी, पृ. ६७
२. इस यात्रा में - आत्म विलाप - लीलाधर जगूडी, पृ. ६२
३. इस यात्रा में - पेड़ - लीलाधर जगूडी, पृ. ४४
४. रात अब भी मौजूद है, मुझे भय है - लीलाधर जगूडी, पृ. १७
५. रात अब भी मौजूद है, रामलीला - लीलाधर जगूडी, पृ. २०
६. रात अब भी मौजूद है - भरोसे की कविता - लीलाधर जगूडी, पृ. ११०

कहानी

दूसरी कमला

डॉ. उषाकुमारी के. पी.*

कमला आज फिर उदास थी, पानी भरने सुबह-ही वह सड़क के किनारेवाले नल के पास खड़ी अपने ही ख्यालों में गुम थी । कल रात गालियों से उसका घर फिर गूँज उठा था । पति रोज़ रात को शराब पीकर आता था और कमला और उसके दोनों बच्चों को भला-बुरा कहता था। इस पियक्कड ने पड़ोसियों के नाक में भी दम कर रखा था । सब लोग इस शराबी को गाली देते । क्यों न देते ? कमला जो कि एक शान्त और सुशील लड़की थी, उसे उस ने अपने प्यार के जाल में फँसाया था और उससे शादी की थी। प्रभाकर के प्रकाश में अपने खिलने की आशा तो कमला को थी सपनों के टूटने में ज़्यादा देर न लगी। कमला दूसरों के घर काम करके जीवन गुज़ारती थी । प्रभाकर ओटो-रिक्शा चलाता था। शादी के बाद कुछ दिनों के लिए कमला का जीवन सुखमय था, लेकिन बाद में नरक से भी कष्टदायक बन गया । घर का सारा भार कमला के कन्धों पर आ गिरा। प्रभाकर को नशे से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी बस कमला ही थी जो घर-घर जाकर काम करती और बच्चों की परवरिश करती । प्रभाकर पत्नी और बच्चों को एक पैसा भी नहीं देता और यह जानने की कोशिश भी नहीं करता कि उसके बच्चे क्या खाते हैं और कैसे जीते हैं ?

रात होते ही नशे में चूर वह घर आता और शुरु कर देता गालियों की बौछार । एक दिन पडोसी इंजीनियर ने उसके गाल पर दो थप्पड़ लगाये। बस थोड़े दिनों के लिए वातावरण कुछ शान्त रहा, किन्तु उसके बाद वही पुरानी पुराणगाथा .... गालियों की वर्षा फिर से शुरु ।

कमला की तबीयत दिन-ब-दिन गिरती जा रही थी । उसका शरीर कई बीमारियों का अड्डा बन चुका था । बेटी भी अब बड़ी हो गई, लेकिन दुबली-पतली सी। बेटा छोटे-मोटे कामों के लिए जाने लगा, वह भी अब जवान हो गया था । बेटी के लिए रिश्ते कई जगहों से आये लेकिन पिता शराबी होने के कारण सब विमुख हो गये ।

प्रभाकर शराब पीकर घर पर चुपचाप पड़ा रहता तो भी शायद कमला को इतना दुःख न होता । पर वह न केवल घर का, बल्कि पूरे मोहल्ले का सिर-दर्द बना हुआ था। चारों ओर के पडोसियों को रोज़ शाम को सात बजते-बजते खिडकियों और दरवाज़ों को बन्द करना पडता था। उन्हें भय था कि, उस शराबी की भाषा घर के बच्चे भी कहीं सीख लें। इंजिनीयर के बच्चे तो अब इन गालियों का एक-दो बार प्रयोग भी कर चुके थे । इसलिए उन्होंने अपने हाथ की गरमी का एहसास उसे दिलाया था। ऐसी गन्दी मछली सारे तालाब को गन्दला कर देती है। घर के आस-पास का वातावरण अगर खराब हो तो आनेवाली पीढ़ियों पर उसका बुरा प्रभाव पडेगा ही। काँटेदार पौधों को अगर जड़ से न काटा जाय तो वे सब को अपने काँटों का शिकार बना देंगे। जीवन को जहरीला बनाना आसान है, लेकिन उसे साफ़-सुथरा रखना ज़्यादा मुश्किल है ।

कमला अपने बच्चों को अच्छे इन्सान बनाने की कोशिश में रात-दिन एक कर देती थी, पर प्रभाकर उन्हें शैतान बनाने की धुन में लगा हुआ था। सांझ होते ही घर के बाहर खड़े होकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता कि - "अब इस कुलटा को मेरी जरूरत नहीं, इसने अपने जवान बेटे को मेरा स्थान दे रखा है।" ऐसे शब्दों को सुनकर बेचारी कमला जन भुन जाती थी। बेटा भी अपने पिता को जान से मारने पर उतारू हो जाता था । क्या-क्या नहीं सहना पड़ा इस अभागिन को ? रात भर नशे में किसी पेड़ के तले प्रभाकर पड़ा रहता और सुबह होते ही मीठे-मीठे शब्दों से फिर अपनी पत्नी का दिल जीत लेता ।

औरतें होती ही ऐसी हैं, बस दो-चार मीठी बातें प्यार से कोई कह दे तो जल्दी ही फ़िसल जाती हैं। ऐसा क्यों होता है ? बेचारी कमला

"छिपा नहीं पाता हूँ अपना अहंकार अपनी आत्मस्थ लाठियाँ / रह-रहकर फूल उठता हूँ खिल उठता हूँ - आत्मप्रशस्ती में ।"[१]

'न्याय' के बारे में वे अपना आक्रोश यों व्यक्त करते हैं -

कौन करेगा न्याय ? / जो न्याय बाँटता है या जिसे न्याय की ज़रूरत है ? / या जो न्याय कर सकता है या जो न्याय का शिकार है / कौन करेगा न्याय ? / वही जो अन्याय करते रहते हैं लगातार ? / उन्हें ही लाना पडेगा न्याय के रास्ते पर ?[२]

'आँधी में औरत', 'वाद्य ले जाती हुई लडकियाँ', 'कष्टसाध्य', 'स्त्री प्रत्यय' आदि कविताओं में जगूडीजी ने नारी जीवन की विडम्बनाओं को उद्घाटित किया है।

जगूडीजी के अनुसार भय हार में हर किसी को शक्ति प्रदान करता है । वे बताते हैं कि समकालीन मानव को सभी बातों का डर है -

आपको डर है आप मुझे समझ नहीं पाएँगे / मुझे डर है मैं आपको पसन्द नहीं आऊँगा ।[३]

जगूडीजी के 'धर्मार्थ' कविता सामुदायिक गुण्डापन का विरोध प्रकट करती है । अपने समय से जूझते हुए वे कविता में एक और या समांतर समय की रचना करते हैं ।

अपने समय और परिवेश को पैनी निगाह से देखनेवाले कवि जगूडीजी के 'अनुभव के आकाश में चाँद' नामक आठवें काव्य संग्रह में सामाजिक यथार्थ, निम्नवर्ग का उल्लेख, आक्रोश आदि हम देख सकते हैं। आज के आडंबर युक्त ज़िन्दगी जीने केलिए मानव लडते रहते हैं । आम जनता की अवस्था दुःखदायक है । वे लिखते हैं -

प्रकृति प्रेरणा से उपजी ज़रूरतें / बढ़ाती जा रही हैं मेरे खर्च / घटती जा रही है मेरी, क्रय शक्ति ।

आज के युग के बारे में वे लिखते हैं -

हत्यारों से भरा हथियारों से भरा / यह हत्याओं का युग है ।[५]

आज की दुनिया में कोई भी सुरक्षित नहीं । कवि अपना यह असुरक्षा का भाव यों व्यक्त करते हैं -

अगर मैं मनुष्य होकर नहीं रह सकता / वनस्पति होकर नहीं रह सकता / जल और वायु होकर नहीं रह सकता / तो मूर्ति बनकर भी मैं सुरक्षित नहीं हूँ ।[६]

आज मानव बडा स्वार्थी है । कवि लिखते हैं -

एक व्यक्ति की ज़िन्दगी एक पेड-सी नहीं हो सकती / हो सकती तो वह एक भी फल किसी दूसरों को न देता / छाया में न बैठने देता किसी को भी ।[७]

आज के आधुनिक मानव के मन में जो-जो भयाशंकायें, तनाव, अपने अस्तित्व की पहचान, प्रतिक्रिया की भावना, परिस्थितियों का विरोध, मन-मुटाव आदि हैं, उन सबका शब्दचित्र हम जगूडीजी के 'महाकाव्य के बिना' संग्रह में पा सकते हैं । निम्नवर्ग का भी अपना अलग महत्व है । जगूडीजी लिखते हैं -

दर असल वे मुझे भाषा से ही उखाड देना चाहते हैं / क्योंकि मैं एक तिनका हूँ / मैं मामूली होने की आखिरी हद हूँ / और लोग मुझे पकडना चाहते हैं ।[८]

'बलदेव खटिक' इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण कविता है । इसमें जगूडीजी निम्न वर्गीय, शोषित लोगों के दुःख-दर्दों का पर्दाफ़ाश करते हैं । कानून हमेशा उच्चवर्ग के अनुरूप है । निम्नवर्गीय लोगों केलिए भूखा होना भी एक जुल्म होता है । 'बलदेव खटिक' के रंगत अपने परिवारवालों की उदरपूर्ति केलिए रॉशन लूटने केलिए मज़बूर हो जाता है । शासक वर्ग की राजनीतिक साजिशों का पर्दाफ़ाश कवि ने इस कविता में किया है।

हमारे समाज में हर क्षण हो रहे उलटफेर की कविताएँ हैं जगूडीजी के 'ईश्वर की अध्यक्षता में' नामक दसवें काव्य संग्रह में ।

संक्षेप में पद्मश्री लीलाधर जगूडीजी की कविता अपने समय और समाज का सच्चा चित्रण करती हैं जो समकालीन परिप्रेक्ष्य केलिए एकदम सही मालूम जाती हैं।

*अध्यापिका, सरकारी वी.एच.एस.एस., आलंकोड, तिरुवनन्तपुरम

१. भय भी शक्ति देता है - पेड का आत्म साक्षात्कार - लीलाधर जगूडी, पृ. ७९
२. भय भी शक्ति देता है - न्याय - लीलाधर जगूडी, पृ. ८५
३. भय भी शक्ति देता है, एक डरी हुई आत्मा - लीलाधर जगूडी, पृ. २७
४. अनुभव के आकाश में चाँद-इस जीवन में - लीलाधर जगूडी, पृ.१४
४. अनुभव के आकाश में चाँद-यही भी एक युग है - लीलाधर जगूडी, पृ. १६
५. अनुभव के आकाश में चाँद-वैसी सुरक्षा - लीलाधर जगूडी, पृ. ७८
६. अनुभव के आकाश में चाँद-फोटू में आत्मा - लीलाधर जगूडी, पृ ८६
७. महाकाव्य के बिना, एक शब्द तिनका - लीलाधर जगूडी, पृ. सं. ६०, ६१

विपाशा अखिल भारतीय कहानी पुरस्कार से सम्मानित डॉ. जे. बाबु (सह संपादक, संग्रथन) को. भाषा संगम द्वारा अनुमोदन । तुम्पमण तंकप्पन विश्व साहित्य विज्ञान कोश छठा भाग आप को दे रहे हैं । समीप खड़े हैं, श्री. के. जी. बालकृष्ण पिल्लै, श्रीमती शैलजा रवीन्द्रन, प्रोफ़. डी. तंकप्पन नायर, डॉ. सुधा वारियर, डॉ. के. सुधर्मा और श्रीमती वी. शुभामणि।

गुरुपूजा कार्यक्रम

हिन्दी पखवाडा समारोह २००९ के सिलसिले में, स्वैच्छिक हिन्दी सेवी संस्था हिन्दी विद्यापीठ (केरल) ने गत सालों की तरह इस साल भी हिन्दीतर प्रांत केरल के बुजुर्ग हिन्दी सेवियों को सम्मानित करने की योजना बनायी है (२५.०९.२००९ - वाई.एम.सी.ए., तिरुवनन्तपुरम)। केरल के हर जिले से हम ऐसे हिन्दी सेवियों की भागीदारी इस में चाहते हैं जो सत्तर साल के ऊपर पहुँच गये हों । निवेदन है कि ऐसे वरिष्ठ किसी संकोच के बिना अपनी पूरी जानकारी एक पासपोर्ट साइस फ़ोटो सहित हमारे पते पर भिजवा दें ।

सचिव, हिन्दी विद्यापीठ (केरल)
डी. पी. आई - जगती रोड
तिरुवनन्तपुरम - ६९५ ०१४

सोचती, स्त्रियों का दिल इतना कोमल और कमज़ोर बनाया गया है ? पुरुष हैं कि अपनी मनमानी करनेवाले; कुत्ते की पूँछ की तरह। पुराने ज़माने में स्त्री को शक्ति का रूप कहा करता था। कहाँ गई उसकी शक्ति ?

प्रभाकर नशे में कमला को पीटता भी था । एक दिन कमला से किसी पड़ोसी ने पूछा - क्यों करता है प्रभाकर ऐसी हरकत ? कमला ने जवाब दिया - "प्रभाकर चाहता है कि मैं अपनी झोंपड़ी उसके नाम लिख दूँ । कैसे हो सकता है यह ? शराबी के नाम अगर यह रही-सही छोटी सी झोंपड़ी भी लिख दूँ तो मैं अपने बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँगी? यह शराबी इसे भी बेचकर पी जाएगा। मुझे अपनी बेटी को किसी अच्छे लडके के हवाले करना है न ? इस पियक्कड ने मेरे बच्चों के लिए किया क्या है ? मैं तो इस शैतान से ऊब चुकी हूँ । ईश्वर ज़रूर इसकी सज़ा उसे एक दिन देगा ही।"

कमला ने हड्डी तोडकर जो कुछ कमाया उससे अपनी बेटी की शादी किसी भले लडके से कराने में कामयाब हुई । अब कमला को कुछ तसल्ली मिली, अपनी बेटी के जीवन को सुखमय बनाने के लिए उसे बहुत यातनाएँ सहनी पड़ी थीं । मुहल्ले वाले भी कहने लगे चलो बेटी तो अब शान्तिपूर्ण जीवन बिता सकेगी। कमला अपने बेटे के साथ उसी झोंपड़ी में रहने लगी । उसका मन अब कुछ शान्त था । प्रभाकर की गालियों का उस पर अब कोई असर न पडता था। कमला अब ईश्वर से प्रार्थना करती रही कि उसकी बेटी को अच्छा जीवन मिले। माँ की तरह उसे दुःख न सहना पडे । क्या भगवान ने कमला की सुन ली ?

शादी के दो-एक महीने बाद बेटी अपने पति के साथ कमला से मिलने आयी और कह उठी कि कुछ रुपयों की ज़रूरत है, कारोबर शुरु करने को। अपना हिस्सा माँग रही थी, कमला चकित हो गयी । कमला ने कहा कि यह झोंपडी मेरे दोनों बच्चों के नाम पर है, उसे बेच कर वह अपनी बेटी के नाम कुछ ज़मीन खरीद देगी। परन्तु दामाद राज़ी न हुआ । उसे तो बस रुपये चाहिए, ज़मीन नहीं । कमला घबरा गई। उसे भय था कि अगर रुपये दे दूँ तो शायद सब उड़ा देगा, इसलिए बहत्तर होगा कि अपनी बेटी के नाम कुछ ज़मीन खरीद कर दिया जाए । बस इसी बात पर दामाद के साथ कुछ अनबन हो गयी । कमला को दुखों ने फिर अपनी बाहों में जकड़ लिया। शराबी बाप तो अपनी बेटी को न तो रुपये देने के लिए तैयार था न ही ज़मीन । शैतान और समुद्र के बीच खड़ी कमला दबी पिसी जा रही थी। अपनी बेटी की शादी कराने के लिए उसे कितने कष्टों का सामना करना पड़ा था, आज वही बेटी माँ की शत्रु हो गई । विधाता का खेल विचित्र है ? कमला के जीवन में केवल दुखों का भंडार ही है ।

कुछ दिन बाद एक दिन सुबह कमला के कानों ने एक दुःखद खबर सुनी, किसी आदमी ने आ कर कहा कि प्रभाकर की जड़ कहीं पास के रेल की पटरी पर पडी है ।

कमला को पहले यह सुनकर विश्वास नहीं हुआ, पर ज्यों-ज्यों लोग उसकी झोंपडी के पास ज़मा होने लगे, कमला को यकीन हो गया कि उसका शौहर भगवान का प्यारा हो गया है। पिछली रात प्रभाकर नशे में चूर हो कर कमला को गाली देते हुए सड़क पर इधर-उधर भटक रहा था। लेकिन कुछ समय के बाद वातावरण शान्त हो गया । सब ने सोचा कि शायद वह पेड़ के नीचे जाकर सो गया होगा । पर प्रभाकर फिर पीने को, उस रेल की पटरी के पास वाले शराब खाने गया। रात के एक बजे वहाँ से गुज़रनेवाली 'शबरी एक्स्प्रेस' से ठकराने से ही उसकी मौत हुई थी। उसके मुँह का आधा भाग रेल से टकराकर चकनाचूर हो गया था । आखिर अपनी किये का फल उसे भुगतना ही पड़ा । उसे सांसारिक झंझटों से मुक्ति मिली । क्या कमला को उससे खुशी हुई ? शौहर के मरने पर क्या कोई भारतीय स्त्री खुश हो सकती है ? चाहे पति कितना भी शैतान क्यों न हो, भारतीय स्त्री कभी भी अपनें शौहर के मिटने पर खुश न होती।

हाँ, कमला अब शान्तिपू[...] जीवन बिताने लगी थी । लेकि[...] दर्द उसके जीवन का जैसे एक अभि[...] अंग बन चुका था। पिता के मर[...] की खबर सुनकर बेटी और दामा[...] घर तो आये पर केवल दो दिन [...] नहीं बीते थे कि दामाद और उस[...] माँ कमला से झगड़ा करने लगे [...] उन्हें अभी रुपये चाहिए । रुपये [...] दिये जाने पर कमला देखती [...] कि दामाद बेटी को खींचकर स[...] तक पहुँच गया है । पिता की चि[...] का भस्म अभी ठंडा भी न हुआ [...] कि बेटी को वहाँ से जबरदस्त निक[...] पड़ा ।

क्या यह दूसरी कमला बने[...]
कमला का अन्तर्मन [...]
उठा!

*प्राध्यापिका, हिन्दी वि[...]
एन.एस.एस. क़लेज, निल[...]
कोल्लम, के[...]

संगठन/SANGRATHAN
Reg :KL/TV (N)/109/2009-2011
All Reg.No.44742 Rupees: 10

August 26, 2011
Licence to post without pre-payment
Licence No. CPMG/KER/WPP-83/2009-2011

अनुवाद परिषद, नई दिल्ली का *भारत सरकार से मान्यता प्राप्त*
एक वर्षीय वाक्सेतु स्नातकोत्तर अनुवाद डिप्लोमा पाठ्यक्रम
(अंग्रेज़ी-हिन्दी-अंग्रेज़ी)

हिन्दी विद्यापीठ (केरल)
जगती, तिरुवनन्तपुरम - १४

FAROOK COLLEGE CALICUT
Date

One Year Vaksetu Post-Graduate Translation Diploma
(English-Hindi-English)
Recognised by Govt. of India
Course designed by Bharatiya Anuvad Parishad, New Delhi

प्रवेश योग्यता : बी.ए./बी.एस-सी. (दूसरी भाषा हिन्दी)
बी. ए./एम.ए.(हिन्दी) उत्तीर्ण छात्रों को प्राथमिकता

संपर्क सूत्र :
प्राचार्य, हिन्दी विद्यापीठ (केरल)
जगती, तिरुवनन्तपुरम - ६९५ ०१४
फोन : ०४७१-२३२७१९७, मोबाइल : ९४४६६६२६९४

Printed and Published by M. S. Jayamohan on behalf of Hindi Vidyapeeth (Keral) Trivandrum - 14 and
Printed at Ananthu Graphix & Printers, Trivandrum-12 Editor : Dr. M. S. Vinayachandran.